मेरी आंखों से

श्रेष्ठ बंगला लेखकों की
चुनी हुई कहानियां

मेरी आंखों से

मेरी आंखों से

विमल मित्र, आशापूर्णा देवी, वनफूल, गजेन्द्रकुमार मित्र, दिव्येन्दु पालित, मिहिर आचार्य, सुनील गंगोपाध्याय, प्रथमनाथ बोसी, आइभि राहा तथा समरेश वसु की उत्कृष्ट कहानियां

क्रम

विमल मित्र/मेरी आंखों से

आशापूर्णा देवी/प्राणों से प्रिय १

वनफूल/ज्योतिष ३

गजेन्द्रकुमार मित्र/गणतान्त्रिक ३

दिव्येन्दु पालित/सर ४

मिहिर आचार्य/खून का रंग लाल ५

सुनील गंगोपाध्याय/उस्ताद ६

प्रमथनाथ बीसी/क्या था विधाता के मन में ८

आइभि राहा/यह एक विचित्र अंधकार ९

समरेश बसु/शहीद की मां ११

[कहानीकारों का परिचय पृष्ठ १३६ से

मेरी आंखों से

विमल मित्र

० ० ०

मेरी एक आदत से सभी परिचित हैं। लिखते-लिखते जब दिमाग खराब हो जाने जैसी अनुभूति होने लगती है तब मैं कलम रख सड़क पर निकल पड़ता हूं। जिस सड़क पर अधिक-से-अधिक भीड़ हो, उस पर घूमने से ही मेरा दिमाग ठंढा होता है। रास्ते में जितनी भीड़ हो उतना ही अच्छा है, उतना ही अधिक मुझे यह महसूस होता है मानो मैं समुद्र के किसी एकान्त किनारे पर घूम रहा हूं।

जो लोग एकान्त पाने के लिये पहाड़ जाते हैं या समुद्र-किनारे जाते हैं वे लोग नहीं जानते कि निर्जनता मनुष्य का स्वास्थ्य खराब करती है। जगह जितनी एकात की होगी, मनुष्य उतना ही अधिक खुद को लेकर परेशान होगा। *याद नहीं कहां तो पढ़ा या किसी का यह कथन कि,* "**The largest city is the lonliest place.**"

इसीलिये जब शाम के वक्त सड़क की भीड़-भाड़ में अकेला-अकेला घूमता हूं

और जनता का निष्कपट आचरण देखता हूं तो मुझे बहुत [illegible] है। उस वक्त कई घन्टों के लिये मैं खुद को भूल जाता हूं। अपनी पीड़ा भी विस्मृत हो जाती है। मुझे लगता है मानो अब मैं इस संसार के नाट्य-मंच का अभिनेता नहीं, सिर्फ एक दर्शक मात्र हूं।

खुद को दर्शक समझने में जो आराम मिलता है उसकी शायद तुलना नहीं की जा सकती।

मेरी अपनी समस्याएं भी उस वक्त जैसे मेरी नहीं रहतीं। अपनी पीड़ा भी उस वक्त अपनी नहीं रहती। अगर एक ही वाक्य में कहूं तो उस वक्त मैं सभी का होता हूं, सभी मेरे होते हैं, फिर भी मैं अकेला रहता हूं।

हां तो, इस वक्त दार्शनिक बातों को जाने दें। मैं दार्शनिक नहीं हूं। बल्कि, कवि भी नहीं हूं। वो सब होने में बहुत लफड़ा है। उससे तो अच्छा है कि मैं एक मनुष्य हूं। एक साधारण मनुष्य। इस अनुभूति में एक सांत्वना तो है। साधारण होकर ही मैंने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है और साधारण मनुष्य के रूप में ही इस दुनियां से चला जाऊंगा। इस कामना में एक विशेष गैर-जिम्मेदारी एवं कर्तव्यहीन अलसता है जिसको भोगना, महसूस करना, मुझे बहुत अच्छा लगता है।

इसी तरह एक शाम को घूमते-घूमते एक जगह भीड़ देखकर मैं ठिठक गया। वह बड़े रास्ते का एक मोड़ था। सामने ही था थाना।

मुझे लगा किसी प्रकार की कोई दुर्घटना हुई है। एक आदमी को घेरकर खड़े सभी लोग बहुत उत्तेजित थे। ऐसा लगता था कि उस व्यक्ति को सभी ने पकड़ रखा है और उसे मार रहे हैं। लात, घूंसे, थप्पड़। पता नहीं, किस अपराध की सजा दे रहे हैं उसे सब मिलकर। बेचारा आदमी कहने की कोशिश करता है कि वह बेकसूर है, लेकिन उसकी सुनता कौन है।

उस आदमी के बगल में ही एक कार खड़ी है।

एक व्यक्ति चिल्लाता है, 'देखते क्या हो, गाड़ी में आग लगा दो।'

मुझे थोड़ा डर लगा, क्या सचमुच ही ये गाड़ी में आग लगा देंगे? लेकिन नहीं, जनता में कुछ स्वस्थ मस्तिष्क के लोग भी थे। उन लोगों ने कहा, 'नहीं, नहीं, आग नहीं लगानी चाहिए। जब पुलिस मौजूद है तो सब कुछ पुलिस के हाथ में ही छोड़ दो।'

पुलिस का एक सिपाही भी पास ही खड़ा था। अब उसने उस आदमी को पकड़ लिया, और पूछा, 'बोल, ड्राइवर कहा भाग गया, बोल ?'

रोनी-सी सूरत बनाकर वह आदमी बोला, 'मैं कुछ नहीं जानता। मुझे छोट दीजिये।'

'छोड़ियेगा नही उसको। किसी तरह भी नही छोड़ियेगा। बेटे की अच्छी तरह धुलाई करिये।'

जिन्होंने धुलाई करने का सुझाव दिया था वे लोग पहले से ही खुद भी अपने भरसक धुलाई कर रहे थे उस बेचारे की। किसी ने उसके बाल मुट्ठी मे पकट रखे हैं, तो किसी ने उसकी गर्दन पकड रखी है, तो किसी ने उसका गला पकड़ रखा है, तो किसी ने उसका कमीज खीचकर फाड दिया है।

मैंने भी उचककर देखा, उस व्यक्ति की हालत शोचनीय थी। कपड़े-लत्ते सब फट गये थे। नाक तथा मुह से खून निकल रहा था। फिर भी किसी की सहानुभूति नही थी उस पर। सिपाही ने उसको पकड़ रखा था लेकिन लात, घूंसों तथा चाटों से बचाने की कोशिश वह भी नही कर रहा था।

बगल के एक व्यक्ति से मैंने पूछा, 'इस आदमी ने क्या अपराध किया है ?'

उस व्यक्ति ने बताया, 'इसने गाड़ी से एक आदमी का एक्सीडेन्ट कर दिया है।'

मैंने पूछा, 'शायद यह गाड़ी का ड्राइवर है ?'

उस व्यक्ति ने कहा, 'नहीं मिस्टर, यह ड्राइवर नही है। जो गाड़ी चला रहा था वह तो भाग गया है। वह पकड़ा जाता तो अब तक उसका भुरकस निकाल दिया होता।'

मैंने पूछा, 'तो क्या यह व्यक्ति गाड़ी का मालिक है ?'

'नहीं भई, मालिक का चेहरा क्या ऐसा ही होता है ? आप देख नही रहे हैं, कितनी कीमती गाड़ी है ? यह आदमी तो ड्राइवर की बगल मे बैठा हुआ था। शायद ड्राइवर का दोस्त है। ड्राइवर भाग गया है और यह भाग नहीं सका।'

मैंने पूछा, 'तो फिर सब लोग मिलकर इसे क्यो मार रहे हैं ? इसको मारने से क्या फायदा ?'

अगल-बगल के सभी लोगों ने मुझे जलती निगाहों से देखा, मानो मेरी दलील किसी को भी पसन्द नहीं आई।

एक सज्जन बोले, 'मिस्टर, इसीलिए तो आये दिन एक्सीडेन्ट होते रहते हैं। इन लोगों को सजा दिये बगैर एक्सीडेण्ट भी बन्द नहीं होंगे।'

सिपाही अभी तक उस आदमी से जिरह ही किये जा रहा था। पूछ रहा था, 'बोल, कहां गया ड्राइवर ? उसका घर कहां है ?'

आदमी बोल रहा था, 'मैं कुछ भी नहीं जानता। वह गाड़ी लिये जा रहा था, मेरा जान-पहचानवाला था, लेकिन उसका घर कहां है, मैं नहीं जानता।'

'घर कहां है, नहीं जानते ? मजाक समझा है क्या ? चल, थाने चल।'

कहकर सिपाही ने भी एक धौल उसकी पीठ पर जमा दी।

बेचारे आदमी ने एक बार फिर कहने की कोशिश की, 'हुजूर, मुझे मारिये मत। नाम-पता मुझे मालूम होगा तभी तो बताऊंगा ?'

'तो, न पता बताएगा, न नाम बतायेगा ? यह तो बहुत ही शैतान है। बिना अच्छी तरह ठुकाई हुए कुछ उगलनेवाला नहीं है।'

कहकर फिर उस बेचारे को एक धौल जमा दी।

मैं खड़ा-खड़ा सब कुछ देखता रहा। यह कैसा न्याय है ? अपराध कोई करे और दण्ड किसी को मिले ! मैंने एक बार विरोध करने का विचार किया। सोचा कि कहूं, आपलोग राम के अपराध में श्याम को सजा क्यों दे रहे हैं ? लेकिन उस वक्त मेरी बात कौन सुनता भला !

मैंने देखा कि सिपाही भी जनता के पक्ष में ही था। वह भी चाहता था कि उस आदमी को सजा मिले। कारण कुछ हो या न हो, पर एक व्यक्ति को सजा दे पा रहा है शायद यही उसकी पद-मर्यादा के लिये गौरव की बात थी।

भीड़ जितना ही ईंधन जुटाती थी सिपाही उतना ही उत्तेजित-उल्लसित हुआ जा रहा था।

और उसी वक्त एक घटना घटी। एक सज्जन ने हठात् वहां अपनी गाड़ी रोकी। गाड़ी से उतरते ही वह बोले, 'अरे, यह गाड़ी तो मिस्टर दासगुप्त

की है।'

मिस्टर दासगुप्त !

बात मेरे कानों मे भी पड़ी। सिर्फ मेरे कानो मे ही क्यों, वहा उपस्थित सभी के कानों मे ही पड़ी। बात पुलिसिये के कान मे भी पडी।

उसने पूछा, 'कौन दासगुप्त ?'

वे सज्जन भीड़ को चीरकर अब सिपाही की ओर बढ गये। बोले, 'अरे भाई, यह गाड़ी मिनिस्टर की है। मिनिस्टर काशीकान्त दासगुप्त की। होम मिनिस्टर। उनकी गाड़ी यहा कौन लाया ? ड्राइवर कहा गया ?'

इतनी देर बाद सिपाही की समझ मे बात आयी। अब उसके चेहरे पर भय, भक्ति, श्रद्धा के भाव प्रस्फुटित हुए। बोला, 'हमारे होम मिनिस्टर की गाड़ी है ? तो पहले क्यो नही बताया आपने ? मैं भी तो इतनी देर से यही कह रहा हूं कि यह ड्राइवर की गलती नही है।'

जो लोग इतनी देर से उस आदमी की मरम्मत करने के लिए उछल-कूद रहे थे वे भी जरा अचकचा गये।

सिपाही ने भीड़ की तरफ देखकर डांटा, 'यहां झमेला क्यों कर रहे हो तुम लोग ? भागो। जाओ यहां से। भाग जाओ।'

लोग विमूढ़-से हो गये। सिपाही की डांट खाकर कुछ लोग तो थोडा पीछे खिसक गये लेकिन उनमें कुछ साहसी लोग भी थे, वे नही खिसके। बोले, 'होम मिनिस्टर की गाड़ी है तो क्या हुआ ? होम मिनिस्टर हैं तो क्या भगवान हो गये ? बुला लाओ अपने होम मिनिस्टर को, अभी होम-मिनिस्टरी का मजा चखा देते हैं।'

अब सिपाही को जरा गर्म होना पड़ा। शायद वह भी डर गया था। अचानक अपनी कमर से ह्विसल निकालकर जोर से बजा दी उसने।

और साथ ही थाने से दो-चार कांस्टेबल लाठी घुमाते हुए दौड़े आये। कमर में रिवाल्वर टंगी हुई थी।

'क्या हुआ है यहा ? क्या हुआ, भई ?'

इधर लोगों ने शोर मचाना शुरू किया तो उधर पुलिस ने लाठी घुमाना।

और पता नही कहां से ईंट, पत्थर तथा सोडावाटर की बोतलें आदि पुलिस

पर बरसनी शुरू हो गयीं। जो जिधर भाग सका भागने लगा। झट-पट सड़क की बत्तियां बुझनी शुरू हो गईं। कहां गई वह गाड़ी, और उस आदमी का क्या हुआ, मेरी बिल्कुल भी समझ में नहीं आया। चारों तरफ टीयर-गैस छूटने की आवाज और धुंए से भरा वातावरण था। क्षण भर में ही वह जगह मानो युद्ध-क्षेत्र में बदल गयी।

मैं भी वहां अधिक खड़ा नहीं रहा। चुप-चाप वहां से निकलकर अन्य इलाके की ओर चला गया जो बिल्कुल शान्त था।

□

यहां तक तो सब ठीक ही था। ऐसी घटनाएं तो कलकत्ता महानगरी के लिए आम बात है। इस घटना को लेकर कहानी लिखना उचित नहीं।

लेकिन कहानी बन गई। यह साधारण घटना ही दूसरे दिन सुबह कहानी बन गई।

दूसरे दिन सुबह अखबार में खबर थी :

'पिछली शाम को कुछ उपद्रवी लोगों द्वारा मुरारी-पुकुर थाने पर आक्रमण किये जाने के कारण पुलिस को उन पर गोली चलानी पड़ी।' घटना का ब्यौरा देते हुए आगे लिखा था, 'उस उपद्रवी दल को शक था कि, स्वराष्ट्र मंत्री श्री काशीकान्त दासगुप्त की कार में बम है और इस शक के कारण उस दल ने कार को रोक लिया। गाड़ी की तलाशी लेने के बाद जब कहीं कुछ नहीं मिला तो उपद्रवी गाड़ी में आग लगा देना चाहते थे कि आखिर पुलिस को बाध्य होकर गोली चलानी पड़ी। स्वराष्ट्र मंत्री श्री काशीकान्त दासगुप्त दिल्ली गये हुए हैं। उनको उक्त खबर ट्रंककॉल द्वारा बता दी गई है। स्वराष्ट्र मंत्रालय के एक व्यक्ति के बताने पर तीन उपद्रवियों को गिरफ्तार किया गया है। अभी तक किसी के हताहत होने का समाचार नहीं मिला है। जांच जारी है।'

■ ■ ■

प्राणों से प्रिय

ग्राशापूर्णा देवी

० ० ० ०

थाने, पुलिस ग्रफसर के घर, ग्रस्पताल, ग्रादि बहुत-सी जगहे जाने-ग्राने, जाने-ग्राने, बहुत दुःख, बहुत कष्ट, कितनी ही जिरह, कितने ही ग्रपमान ग्रौर कितनी ही ग्लानि के एक दीर्घ दिन के महासमुद्र को पार कर जब शचिनाथ घर लौटे तब रात बहुत बीत चुकी थी।

दिन भर की इस तकलीफ ग्रौर परेशानी में कौन-कौन उनके साथ थे, यह शचिनाथ को इस समय याद नही ग्रा रहा है। क्या भानजा निमाई भी था? ग्रौर छोटा साला निधु? ग्रौर मित्र देवेश?

शायद वही लोग साथ ग्राकर उसे पहुचा गये हैं? या कि वे लोग भी यहीं रुक गये हैं? क्या टैक्सी से सभी एकसाथ उतरे थे, ग्रौर टैक्सी खाली लौट गई है? या शचिनाथ ग्रकेला ही उतरा था, बाकी सब चले गये हैं?

शचिनाथ ठीक तरह से याद नहीं कर पा रहे हैं, लेकिन हठात् उन्हें लगा कि ग्रगर वे लोग भी यहां उतरे होंगे तो यह उनकी बहुत बड़ी गलती होगी

उनको भी शचिनाथ की ही तरह प्यास लगी होगी। एक समुद्र को पूरी तरह सोख लेने जैसी प्यास! इस घर में कहां है इतना पानी! इसके अलावा, शायद उन्हें भूख भी लगी होगी। सुबह से ही तो शचिनाथ के साथ घूमते रहे हैं।

फिर भी शचिनाथ इस मुहूर्त याद नहीं कर पा रहे कि सचमुच कौन-कौन थे उनके साथ?

मानो पेट से गले तक धूल भरी पड़ी हो, ऐसा महसूस हो रहा था। भीतर से बहुत जोर की उबकाई उठ रही थी। आह, काश, इस कमरे में एक सुराही पानी होता!

पर यह कमरा शचिनाथ का स्टडी-रूम था। इस कमरे में सुराही या घड़ा रहने का सवाल ही नहीं उठता। सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते सीढ़ियों के बीच में बने नीची छतवाले इसी कमरे में शचिनाथ ठहर गये थे; दो तल्ले तक नहीं गये।

किस तरह जा सकते हैं?

वहां लीला जो होगी।

जाने पर उससे आमना-सामना करना पड़ेगा।

आश्चर्य की बात है कि, शचिनाथ के पास कोई आ नहीं रहा है। क्यों नहीं आ रहा है? डर से? जिस डर से शचिनाथ दो तल्ले नहीं गया?

लेकिन, फटिक तो आ सकता है?

उसे किस बात का डर है? घर के एक छोकरे-नौकर से अधिक तो कुछ नहीं है वह। उसमें भला इतनी बुद्धि या चिन्ता कहां है जो सोचेगा कि, बाबू के कमरे में अभी नहीं जाना चाहिये! बाबू का मन ठीक नहीं है!

इतना बुद्धिमान न होकर अगर फटिक बेवकूफ की तरह ही अचानक इस कमरे में आ जाय, तो शचिनाथ उससे एक गिलास पानी मंगवा सकते थे।

लेकिन आज वह भी मूर्ख की तरह काम नहीं कर रहा है।

इधर शचिनाथ के पेट में ऐंठन हो रही है। भयानक ऐंठन हो रही है। शायद शचिनाथ बेहोश हो जायेगा। आह, बेहोश होने से पहले अगर एक गिलास

पानी मिल जाता। सिर्फ एक गिलास। ठण्डे पानी का भरा हुआ एक बड़ा गिलास।

शचिनाथ से थोड़ी ही दूर, बिल्कुल थोड़ी ही दूर वह इच्छित वस्तु है, खुद शचिनाथ के ही कमाये रुपयों से खरीदे फ्रिज के अन्दर। इसी समय उठकर, फ्रिज खोलकर, चार बोतल निकालकर गटा-गट पी सकता है।

लेकिन ऐसा करना क्या शोभनीय होगा ?

शचिनाथ ने सोचा।

जबकि शचिनाथ को इस समय इतना भी ठीक से याद नहीं है कि दिन भर वे किसके साथ घूमते रहे हैं, किस-किसके साथ बातें करते रहे हैं, फिर भी उनके मन में यह बात आयी कि, 'क्या ऐसा करना शोभनीय होगा ?'

गत रात जिसके बेटे का खून हुआ हो, दिन भर जिसको उस खून के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते बीता हो, खुद अपनी ही नजरों से देखकर अपने ही बेटे की लाश की शिनाख्त करनी पड़ी हो, और यह रिपोर्ट लिखकर आना पड़ा हो कि, 'हां, मेरा बेटा पार्थनाथ, उम्र बाईस वर्ष, पोस्ट-ग्रेजुएट का छात्र, कल रात जब खाना खाने बैठ रहा था कि पता नहीं किसने उसे बाहर से आवाज दी और उसको बुला ले गये। फिर, उसके बाद, वह नहीं लौटा।' वही आदमी खुद अपने हाथ से फ्रिज में से पानी लेकर पीयेगा ? छी: छी: !····और फिर वह दूसरी बात ? उस बात को अभी कोई नहीं जानता। अगर वह बात भी सामने आ गई, तब ?·········

तब लोग क्या कहेंगे शचिनाथ को ?

तो क्या किसी को बुलाकर ही शचिनाथ एक गिलास पानी मगाये ? लेकिन क्या ऐसा करना अच्छा लगेगा ?

आश्चर्य की बात है, पार्थनाथ की वे बड़ी-बड़ी आंखें, बिखरे-बिखरे बाल, बुद्धि-दीप्त युवा चेहरा, ऐसे पुत्र का गत रात खून हो गया है, और तब भी शचिनाथ है कि बैठा-बैठा सोच रहा है, क्या अच्छा लगेगा और क्या अच्छा नहीं लगेगा ?

लेकिन पानी तो चाहिए ही।

शचिनाथ मन को कड़ा करने की कोशिश करने लगे। शचिनाथ फटिक को

वाज देने की कोशिश करने लगे पर नहीं, गले से आवाज ही नहीं निकल
ही है। क्या गले को लकवा मार गया है? या शचिनाथ गूंगा हो
या है?

व क्या करे शचिनाथ?

अब शचिनाथ मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा कि कोई आ जाय इस कमरे में।
और शायद सच्चे मन से की गयी प्रार्थना का असर भी होता है। इसलिये
फटिक ही आया। वह चोर की तरह दरवाजे पर आ खड़ा हुआ।

शचिनाथ के हाथ मानो स्वर्ग लग गया। बोले, 'एक गिलास पानी ला।'

फटिक ने झिझकते-झिझकते कहा, 'बुआ-मालकिन ने हाथ-मुंह धोकर कपड़े
बदलने को कहा है।'

'जो कहता हूं, वह कर।'

फिर शचिनाथ ने अचानक ही लड़के को धमकी दी, 'पानी ला।'

फटिक जल्दी-जल्दी वहां से चला गया। थोड़ी देर बाद ही फिज खुलने की
आवाज सुनाई दी। शचिनाथ को महसूस हुआ कि यह आवाज भी इतनी
मधुर हो सकती है, इसका तो उनको ज्ञान ही नहीं था आज तक।

फटिक हाथ में एक बोतल लिये वापस उनके पास और भी चोर की तरह आ
खड़ा हुआ। बोला, 'गिलास तो मिल नहीं रहा है।'

'गिलास नहीं मिल रहा है? अच्छा ही है।'

ठंढे पानी की वह बोतल शचिनाथ ने लगभग छीनते हुए ही लड़के के हाथ से
ले ली; और फिर वह पानी, सब कुछ शीतल करता हुआ, एक मरुभूमि के
रास्ते से नीचे उतरने लगा। शचिनाथ ने सोचा—मन, प्राण, आत्मा, स्नेह
शोक, ये सभी मिथ्या हैं। सत्य कुछ है तो वह है शरीर। शरीर ही स्वामी
है। शेष सभी तो सिर्फ दास हैं।

अगर ऐसा नहीं होता तो पानी की धार गले में उंड़ेलते ही ऐसा क्यों लग
कि सभी कष्टों से मुक्ति मिल गयी है!

खाली बोतल लौटा रहे थे कि लड़के का चेहरा उतरा हुआ-सा देखकर उन
पूछा, 'शायद अभी तक तूने खाना नहीं खाया है?'

फटिक चौंक उठा।

इस ममता भरे प्रश्न के लिये वह स्वप्न में भी प्रस्तुत नही था इसीलिये उसने चौंककर धीरे-से ना मे सिर हिलाया।

शचिनाथ ने फिर पूछा, 'शायद खाना नही बना है ?'

सबसे ऊपर शरीर का ही महत्व नहीं होता तो पानी पीने के साथ-साथ ही क्या शचिनाथ ऐसा एक अति स्वाभाविक प्रश्न पूछ सकते थे ?

फटिक ने रुलाई के आवेग को दबाते हुए कहा, 'सुबह भी खाना नही बना था।'

'ओह, तो आज घर में किसी ने भी नही खाया है ?'

'मैंने और रसोइये ने दोपहर मे मूडी खाई थी।'

शचिनाथ ने चट् से पूछ ही लिया, 'और तुम्हारी मालकिन ?'

'मालकिन ?'

फटिक ने बड़े उत्साहित स्वर में बताया, 'मालकिन ने तो पानी की बूद तक ग्रहण नहीं की है। बुआ-मालकिन ने बर्फ डाला हुआ शरबत ले जाकर, मिन्नत करके, पिलाना चाहा था लेकिन मालकिन ने गुस्से में वह शरबत नाली मे फेंक दिया।'

बर्फ डाला हुआ शरबत ! नाली में फेंक दिया !

शचिनाथ स्तब्ध रह गया।

शचिनाथ आज अपनी ही नजरो में बहुत क्षुद्र, दीन, हीन हो उठा। अब इसके बाद तो लीता के सामने जाने काबिल ही नही रहा। तो क्या करे शचिनाथ ? फटिक को मना कर दे ? कह दे कि, 'मैंने तुमसे पानी मागकर पीया था यह किसी से नहीं कहना !'

इसका मतलब शचिनाथ और अधिक अकिंचन हो जाये ? और अधम हो जाये ? नहीं।

तो क्या बात को थोड़ा घुमाकर कहे कि, 'स्नान के पहले मैंने पानी पीया है, सुनकर, तेरी बुआ-मालकिन गुस्सा होंगी, समझे ? इसलिए यह किसी से मत कहना कि मैंने पानी पीया है।'

हां, इस तरह कहा जा सकता है।

तरह कहूंगा तो फटिक भी असली बात को पकड़ नहीं पायेगा। या फिर
ार यों कहूं कि—

त रात में शचिनाथ के बड़े लड़के का खून हो गया था और उस खून के
ुर्म में शचिनाथ का छोटा लड़का पकड़ा गया है। इसके बावजूद, शचिनाथ
अभी यहां बैठा-बैठा तिकड़म भिड़ा रहा है, सोच रहा है कि एक साधारण-सी
भूठी बात को किस तरह से कहे कि वह सुनने में सच्ची और वाजिब लगे।

शचिनाथ के बड़े लड़के की हत्या की बात तो बहुत लोग जानते हैं और अब
तक बाकी सब ने भी जान ली होगी। हो सकता है, कल के अखबार में
मोटे-मोटे अक्षरों में नाम देकर ही खबर छपे, लेकिन शचिनाथ के छोटे लड़के
के बारे में अभी तक कोई नहीं जानता—सिवाय उन लोगों के जो दिन भर
उसके साथ रहे थे।

कौन हैं वे लोग ?

शचिनाथ का भानजा, साला, और मित्र ? यही न ?

तो क्या वे लोग जगह-जगह यह कहानी सुनाते फिरेंगे ?

ाहेंगे, 'पुलिस आजकल बहुत ही मुस्तैद हो गई है। खून करने के साथ-साथ
ी खूनी को पकड़ लिया। अब आशा होती है कि देश में शांति कायम हो
जायेगी। भई, तीन-चार लड़के इस काम में एक साथ थे; सभी को झट् से
पकड़ लिया। उन्हीं में शचिनाथ का छोटा लड़का शक्तिनाथ भी था, जिसकी
उम्र है अट्ठारह साल। इसी वर्ष तो बी० ए० पार्ट वन की परीक्षा दी है
उसने।'

शचिनाथ के बड़े लड़के के साथ जो कुछ हुआ वह तो जरा भी अविश्वास
योग्य नहीं है क्योंकि वह शहर की नित्य की घटनाओं में से ही एक थी
लेकिन छोटे लड़केवाली बात ? क्या इससे अधिक अविश्वसनीय भी को
खबर हो सकती है इस दुनिया में ? अतः इसी बात को लेकर शहर भर
चर्चा फैलेगी। तब यह खबर लीला के कानों में भी जायेगी।

शचिनाथ का साला अपने भानजे की जमानत देना चाहता था। बहुत दौड़-
की थी, लेकिन इसके लिये पुलिस तैय्यार नहीं हुई। अगर पुलिस राजी
जाती तो किसी तरह यह खबर लीला से छिपायी जा सकती थी, लेकिन
इस खबर को किस प्रकार सजाये कि—

फिर वही बातों को सजानेवाली तिकड़म सोचने बैठ गया शचिनाथ !

उन्होंने अवश्य यही कहा था, 'कही कोई गलतफहमी हुई है । ऐसा हो ही नहीं सकता ।' यह बात निमाई, निधु और देवेश ने कही थी, पर शचिनाथ को ऐसा नही लगता । शचिनाथ सोचता है, कही कोई गलतफहमी नहीं हुई है ।

हालाकि, शचिनाथ के छोटे लड़के शक्तिनाथ के वहा होने की तिल भर भी संभावना नही थी । बल्कि, शक्तिनाथ के तो उस समय कलकत्ता मे होने की ही बात नही थी । शक्तिनाथ एक छोटा सूटकेस लेकर परसों सुबह ही यह कहकर गया था कि 'चार-पाच दिन के लिये मैं कलकत्ता के बाहर जा रहा हूं ।'

परसों से कल तक, क्या चार दिन पूरे हो गये ? हो सकता है, कहीं लौटते समय रास्ते में ही तो पुलिस ने उसे झूठ-मूठ ही—शायद निधु ने भी तो यही कहा था ।

शचिनाथ ने उत्तर दिया था, 'महिपादल से लौटते समय बेहाला रास्ते मे नही पड़ता है, निधु ।'

हा, शक्ति परसो यही कहकर गया था कि महिपादल जा रहा है ।

बिना किसी काम के ही महिपादल जाने की बात सुनकर शचिनाथ को अच्छा नहीं लगा था । उन्होंने सोचा था, बहुत ज्यादा हाथ के बाहर हुआ जा रहा है लड़का । बाप की पॉकेट से रुपये खर्च करेगा आंख बन्दकर । लेकिन यह सब बातें इस जमाने के अन्य बापों की तरह शचिनाथ ने भी मुह खोलकर कही नहीं ।

शचिनाथ ने सिर्फ इतना पूछा था, 'अचानक ही कलकत्ता के बाहर जाने का उद्देश्य क्या है ? और क्या नाम है तुम्हारे गंतव्य-स्थल का ?'

शक्तिनाथ ने पर्यटन की दृष्टि से किसी दर्शनीय स्थल का नाम नही बताया; बल्कि आवेशभरे स्वर में ही बोला था, 'महिपादल का नाम कभी नही सुना आपने ?'

'महिपादल का नाम कभी नही सुना मैंने ?' अवाक् होकर शचिनाथ ने बेटे के वाक्य को ही दोहराया ।

'और क्या !' कहकर शक्तिनाथ खट-खट करता तेज कदमों से नीचे उतर गया ।

'बस हो गया न ?' लीला ने कहा, 'मन की निकल गई न ? गाल आगे करके थप्पड़ खानेवाली बात हुई न !'

शचिनाथ उसी वक्त चिल्ला पड़े, 'इसका मतलब मुझे यह पूछने का भी हक नहीं है कि लड़का कहां जा रहा है ?'

'नहीं । कुछ भी पूछने का हक नहीं है । आजकल वह जमाना नहीं रहा ।'

वह जमाना नहीं रहा, अतः शचिनाथ को चुप रह जाना पड़ा था, जबकि और सब बातों में जमाना ज्यों-का-त्यों था ।

पार्थ जब वापस नहीं लौटा तो इस जमाने के अन्य सभी बापों की तरह शचिनाथ को भी रात बारह बजे तक पूरा कलकत्ता शहर छानना पड़ा था । ढूंढ़ना पड़ा था अस्पतालों एवं थानों में । फिर वह भयानक खबर सुनने के बाद से तो मानो बेहद मानसिक यंत्रणा के बेड़े पर चढ़कर ही अगाध समुद्र जैसा एक दिन पारकर, और एक मरुभूमि साथ लेकर, लौटा था शचिनाथ ।

□

लेकिन आजकल इन सब का कोई उपाय नहीं है ।

गत रात के नौ बजे से हुई अब तक की सारी घटनाओं को चित्र की तरह सजाने की कोशिश की शचिनाथ ने ।

पार्थ पढ़ते-पढ़ते उठ आया था । बोला था, 'मां, मुझे भूख लगी है, खाना दो ।'

पार्थ हमेशा ऐसा ही किया करता था । छोटेपन से ही उसकी आदत थी कि भूख लगने के बाद उसे एक मिनिट की देर भी सहन नहीं होती थी ।

लीला ने रसोइये को आवाज दी । ठीक उसी समय बाहर से किसी ने पार्थ को भी आवाज दी । फटिक ने आकर कहा, 'बड़े भैय्या, आपको एक लड़का बुला रहा है ।'

'लड़का बुला रहा है ?'

लीला ने नाराज होकर कहा था, 'तब तो हो गया खाना !' एक भयानक और अशुभ क्षण में ही शायद वह अशुभ बात लीला के मुंह से निकली थी ।

'तुम थाली परोसकर लाम्रो न मां, मैं अभी आया।'

कहकर पार्थ गया था सो फिर नहीं लौटा।

बहुत देर होती देखकर लीला ने कहा था, 'फटिक, जरा देखकर आ तो सडक पर खड़ा किससे बात कर रहा है लडका ?'

फटिक ने अम्लान स्वर मे कहा, 'सडक पर थोड़े ही खडे हैं भैया। वे तो उसी समय लडको के साथ चले गये थे।'

चला गया ? खाना परोसने को कहकर चला गया !

लीला हाफती-सी मेरे पास आकर बोली थी, 'अजी, तुम जरा बाहर जाकर देखो न, पार्थ ने मुझसे खाना मागा और अचानक पता नही बाहर से किसने पुकारा, उनके सग ही चला गया। मुझे बहुत चिन्ता हो रही है।'

शचिनाथ ने कहा था, 'ओह, तो चिन्ता करने का जमाना नही गया अभी तक ?'

लीला ने धिक्कारते हुए कहा, 'छी', ऐसे मौके पर तुम मुझसे बदला चुका रहे हो ? तुम्हें शर्म नही आती ? कैसे बाप हो तुम !'

"हां, तुम ठीक ही कहती हो।'

शचिनाथ उसी समय घर से निकल गया था।

दुकानें तो सभी बन्द हो चुकी थी, सड़क सुनसान पड़ी थी। शचिनाथ का दिल किसी अज्ञात आशंका से काप उठा था। मोहल्ले का जो भी व्यक्ति शचिनाथ को दिखाई पड़ा उसी से पार्थ के बारे मे उन्होने पूछा। किसी ने कहा, नही, मैंने नही देखा। किसी ने कहा, हां, थोडी ही देर पहले एक लडके के साथ जाते देखा था।

उसके बाद ?

उसके बाद बगल के पडोसी भवेशबाबू के घर से फोन करने शुरू किये थे। याद आता है, फोन-पर-फोन करते गये थे वे। और उसके बाद ? नहीं, उसके बाद कुछ भी याद नहीं। सब कुछ धुंधला हो जाता है।

याद नहीं कर पा रहे हैं कि कब पुलिस ने आकर पूछ-ताछ की थी, 'आपका एक लड़का और भी तो है न ? क्या नाम है उसका ? कितनी उम्र है ?'

याद नहीं कर पा रहे हैं कि कब मिधु ने आकर कहा था, 'हां, मैं जनतोषों के

ाकर अपनी आंख से देख आया हूं । शक्ति ही है ।

इतना याद है कि अभी थोड़ी देर पहले लौटते समय निधु ने कहा था,
कहीं कोई गलतफहमी हुई है । नहीं तो ऐसा हो ही नहीं
ा । असंभव । हो सकता है, वह वहां से जल्दी ही लौट आया हो और
ते में—'

र जवाव में शचिनाथ ने कहा था, 'वेहाला तो महिषादल से लौटने के मार्ग
आता नहीं है, निधु ।'

उसके वाद फिर सव धुंधला हो जाता है ।

क्या उनलोगों ने हाथ पकड़कर शचिनाथ को इस सोफे पर लाकर बैठा
दिया है ?

हठात् ही उनको याद आया कि फटिक नामक भूख का मारा लड़का आज
सिर्फ मूड़ी खाकर ही रह गया है ।

फिर हठात् ही यह याद आया कि सुषमा ने वर्फ डालकर शरवत वनाया
था और लीला को पिलाने के लिये मिन्नतें कर रही थी कि लीला ने उस
मूल्यवान वस्तु को नाली में फेंक दिया ।

काश कि वही चीज इस वक्त कोई शचिनाथ को लाकर देता !

शचिनाथ के दिमाग पर फिर कुहरा-सा छा गया ।

लेकिन शचिनाथ के पास कोई भी नहीं आ रहा है, जवकि सुषमा शचिनाथ
की ही वहन है ।

इसका मतलव, लीला की अपेक्षा वे लोग शचिनाथ से अधिक डरते हैं । इसका
मतलव, उन्होंने दूसरी खवर भी सुन ली है । लेकिन लीला ? कहीं उसे भ
नहीं सुना दी हो वह खवर ! ऐसा वे लोग कर सकते हैं भला ? वे भी
मनुष्य हैं । या पाषाण हैं ?

'वावू, वुआ-मालकिन ने कहलाया है कि चाय का पानी रख दिया है,
आप नहा लीजिये ।'

'चाय का पानी ?'

हठात् ही मानो शचिनाथ को दो तल्ले पर जाने का एक सहारा मिल
हो । जो जगह उनको इतनी देर से खींच रही थी वहां सिर्फ इसलि

गये कि अनजाने में ही सीढ़ियों के बीच बने कमरे मे वे ठहर गये थे। बस इसी लज्जावश वह अब तक ऊपर नही गये थे।

अब शचिनाथ ने बाकी बची सीढ़ियों को पार किया और अस्फुट स्वर में चिल्लाये, 'क्यों ? मेरे लिए चाय का पानी क्यों रखा ? मैं खूब शीतल होकर लौटा हूं न ! इसीलिये मुझे बर्फ डालकर शरबत-वरबत देने की जरूरत नहीं समझी। क्यों ?'

अपनी आवाज अपने ही कानों में बहुत भद्दी और बेसुरी लगी शचिनाथ को। सुषमा को भी लगी।

फिर भी स्वर तो था।

स्वर जिससे सहारा मिलता है।

स्तब्धता भयंकर होती है। शब्दहीनता प्रेत की तरह गला दबाने को आती है। सुषमा अपने बड़े भाई की आवाज सुनकर हिम्मत कर आगे बढ़ी, अस्फुट स्वर में बोली, 'रात हो गई है न, इसीलिये—'

'हूं ह, इसीलिये ! तो इसका मतलब है कि दिन भर मेरे गले मे कोई शीतल जल ही ढालता रहा है न !'

सुषमा ने मानो अपने भाई के सूखते गले को महसूस किया, बोली, 'अभी लाती हूं।'

सुषमा ने और भी एक बात कही, बहुत ही अस्फुट स्वर मे, 'मैंने चाय की बात इसलिये कही थी कि वे लोग भी चाय ही पीना चाहते हैं।'

वे लोग कौन ?'

वे लोग से मतलब ?

ओह ! निमाई, निधु और देवेश ?

तो वे शचिनाथ को उतारकर चले नहीं गये ? वे यहां आये, बैठे, और चाय पी है। हो सकता है, रात का खाना भी वे यही खायेंगे, उनके लिये इसी घर मे अब भोजन बनेगा !

हठात् शचिनाथ को फिर फटिक का चेहरा याद आ गया। खाना बनेगा तो फटिक भी खा सकेगा।

ताज्जुब की बात है ! शचिनाथ क्या पत्थर का बना हुआ है ? शचिनाथ के एक लड़के का खून हो गया जो इस समय मुर्दाघर में पड़ा हुआ है, दूसरे को खून के जुर्म में थाने में बन्द करके रखा गया है, और इधर शचिनाथ है कि फटिक के खाने की बात को लेकर चिन्ता कर रहा है ? उस फटिक को लेकर जो घर का एक अकिंचन नौकर मात्र है।

'भैया !'

शरबत से भरा हुआ कांच का बड़ा गिलास हाथ में लिये सुषमा खड़ी थी।

एक बार तो शचिनाथ की इच्छा हुई कि गिलास पर टूट पड़े, लेकिन सब जगह कुहरा छा जाने पर भी मस्तिष्क का एकाध कोना अभी भी बहुत साफ था। अतः शचिनाथ को ख्याल आया कि लीला के बारे में पूछने का यह अच्छा सुअवसर है; लीला के पास पहुंचने का भी यही स्वर्ण अवसर है।

इसीलिये हाथ न बढ़ाकर उन्होंने पूछा, 'भाभी ने कुछ खाया-पीया कि नहीं ?' भाभी से उनका मतलब अवश्य ही 'तुम्हारी भाभी' से था।

सुषमा को मन-ही-मन जोर की हंसी आई, लेकिन ऊपर से बहुत ही मरी-सी आवाज में, मानो वही अपराधिनी हो, बोली, 'मैं तो कह-कहकर हार गई— नाराज होती हैं।'

'नाराज होने का मतलब ? नाराज होने की क्या बात है ?'

कहकर मानो स्वयं भी गुस्से में भरकर बड़बड़ाते हुए अपने शयन-कक्ष में घुस गया शचिनाथ। कल से जिस कमरे को आंख से देखा तक नहीं था, उसी कमरे में शचिनाथ इसलिये गुस्से का दिखावा कर बड़बड़ाता हुआ घुस गया था कि शायद इस गुस्से के बहाने ही पत्नी से कुछ-न-कुछ बोलना तो सहज हो जायेगा।

लेकिन कमरे में घुसते ही सचमुच के गुस्से से शचिनाथ की समस्त स्नायु-शिरायें दप-दप कर सुलग उठीं।

शचिनाथ का मन हुआ कि चीखकर कहे, 'ओह, तभी ! तभी तुम्हें इतनी विलासिता सूझती है ! शरबत का गिलास नाली में फेंक देने की विलासिता !' लेकिन इच्छा होने से ही तो सब बातें कही नहीं जा सकतीं। पृथ्वी की चरम अविश्वसनीय घटना के कारण सब कुछ उलट-पलट हो जाने पर भी 'क्या अच्छा लगेगा और क्या अच्छा नहीं लगेगा' का भेद तो कभी नहीं मिटेगा।

इसीलिये अपनी चीख पड़ने की इच्छा को शचिनाथ ने रोक लिया । भीतर जल रही आग को नियंत्रित करने की कोशिश करने लगा।

पर इतना बड़ा ढोंग देखकर क्या वैसा करना सम्भव था ? सिर्फ ढोंग ही नहीं, अश्लीलता ।

शचिनाथ का शयन-कक्ष अभी भी पहले की ही तरह सजा हुआ है। उसी तरह खूबसूरत रंगीन चद्दर बिछा पलङ्ग । उसी तरह किताबों की रैक पर सजी हुई छोटी-छोटी गुड़ियों की कतार । मेज पर टाइम-पीस के पास काच के दो पक्षी । सामने दीवार पर झूलता लीला द्वारा अपने बचपन में कार्पेट पर बुना प्राकृतिक दृश्य । कांच की अलमारी मे करीने से सजी, लीला द्वारा संचित की हुई बहुविध शौकीनी और सजावट की चीजें । सभी बातें तो ज्यों-की-त्यों, हमेशा की तरह, ठीक-ठीक हैं । कहीं कुछ भी तो अस्त-व्यस्त या इधर-उधर बिखरा हुआ नहीं है ।

और ठीक पहले की ही तरह, हमेशा की ही तरह, फुल स्पीड मे सिर पर पंखा चलाये और स्वच्छ धुली हुई साड़ी पहने लेटी हुई है लीला ।

इतनी अस्वाभाविकता कैसे सहन की जा सकती है ?

हालांकि दरअसल इसमें अस्वाभाविकता की कोई बात नहीं थी । अगर कोई आकस्मिक दुर्घटना घट जाय, तो क्या व्यक्ति घर-गृहस्थी को उजाडकर, सब कुछ तहस-नहस कर डालता है ? सोने की जगह सोता नहीं ? कि बैठने जगह बैठता नहीं ? कि पहनने के कपड़ों में धूल-मिट्टी रगड़कर उन्हें मैला कर डालता है ?

शचिनाथ ने यह युक्ति-संगत बात क्यों नहीं सोची ?

शचिनाथ की आंखों के समक्ष कल रात से लेकर आज दिन-भर का अजस्र घृणित, कुत्सित, बीभत्स दृश्य तैर उठा । शचिनाथ के पेट में फिर उबकाई जोर मारने लगी ।

शचिनाथ ने कर्कश और टूटे हुए शब्दों मे कहा, 'शरबत क्यों नहीं पीया तुमने ?'

यही तो कहना चाहता था शचिनाथ । यही कहने के लिये तो वह गुस्से का दिखावा करके इस कमरे मे आया था । लेकिन क्या इसी तरह से बोलना भी चाहा था उसने ?

लीला ने शचिनाथ से यह बात सुनने की उम्मीद नहीं की थी। वह उठकर बैठ गई, और बोली, 'तुम भी यही बात कहते हो!'

'कहूंगा क्यों नहीं? आखिर खाये-पिये बिना तो काम चलने से रहा। अभी ना करोगी तो फिर मांगकर खाना-पीना पड़ेगा। मरुभूमि की बालू से तो पेट की भूख-प्यास बुझ नहीं जायेगी!'

लीला को लगा कि शचिनाथ अभी भी अपना वही बदला ले रहा है। वह अपने अन्तर की तीव्र, तीक्ष्ण रुलाई के आवेग को सम्हाल नहीं सकी। हिचकियां बंध गयीं। रोते-रोते बोली, 'मेरा पार्थ खाना मांगकर भी बिना खाये चला गया, लौटकर नहीं आया और मैं खुद खा लूं? जब तक तुम लोग उस खूनी शैतान को पकड़कर दण्ड नहीं दिलवाते, तब तक मैं—'

शचिनाथ के हृदय में फिर वही आग सुलग उठी। शचिनाथ ने सोचा, इसी क्षण इसकी शोक की इस विलासिता को वह मिटा सकता है, वह अस्त्र उसके हाथ में ही मौजूद है।

जबकि थोड़ी ही देर पहले तक वह बातों को इस तरह सजा-संवार रहा था कि किसी तरह भी वह दूसरी बात लीला के कानों तक न पहुंचे।

इसका मतलब, पूरी स्पीड में चलते पंखे के नीचे साफ-सुथरी साड़ी पहने सोई लीला को देखकर उसे ईर्ष्या हुई! कभी वह इसी लीला को 'प्राणों से प्रिय' सम्बोधन से पत्र लिखा करता था, यह बात भी इस समय भूल गया।

फिर भी शचिनाथ ने चीख-चिल्लाकर कुछ नहीं कहा। बल्कि, शान्त स्वर में ही कहा, 'उसको दण्ड मिलने से क्या पार्थ लौट आयेगा?'

'जानती हूं। जानती हूं। वह लौट नहीं आयेगा, जानती हूं।' लीला उन्मादित आंखों से देखती हुई बोली, 'फिर भी मेरे कलेजे की यह अग्नि तो ठंडी हो जायेगी।'

'जरूर ठंडी हो जायेगी!' शचिनाथ ने व्यंग्यपूर्वक कहा, 'तब तो तुम्हें वह खबर सुनानी ही पड़ेगी। तो सुनो, उस शैतान को ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। वह पकड़ा गया है।'

'पकड़ा गया है? पकड़ा गया है वह? कहां है? कहां है वह?'

'हाजत में।'

'हाजत में ? तुम देख आये हो उसे ? पूछा था कि पार्थ ने उसका क्या बिगाड़ा था ?'

'नहीं पूछा।'

'नहीं पूछा ?' लीला बिलबिला उठी, 'कैसा पत्थर दिल पाया है जी तुमने ? मुझे ले चलो। मैं जाकर देखूंगी उसे।'

'देखने की जरूरत नहीं पड़ेगी।' मानो शचिनाथ किसी दर्शनीय वस्तु को देख रहा हो, इस तरह आहिस्ते-आहिस्ते, संभाल-संभालकर कहा उसने, 'बहुत देख चुकी हो उसे।'

'बहुत देख चुकी हूं !'

अचानक लीला भयभीत हो जाती है। बहुत ही भयभीत। लीला की रुलाई रुक जाती है। लीला के गले से एक अस्फुट शब्द निकलता है, 'कौन ?'

'तेरा छोटा बेटा !'

■ ■ ■

ज्योतिष

वनफूल

० ० ०

ज्योतिष के आने की बात थी। मैं सूटकेस सजाकर उसके इन्तजार में बैठा हूं। करीब महीने भर पहले हम दोनों का कश्मीर जाने का प्रोग्राम बना था। खुद उसी ने यह प्रस्ताव मेरे सामने रखा था। बोला था, 'भाई परेश, अब तो कलकत्ता जरा भी अच्छा नहीं लगता है। बम-बाजी और राजनीति, सस्ते नाटक और फालतू सिनेमा, घेराव-स्ट्राइक और हमले—मेरा तो दम घुटा जा रहा है, भाई। चल कहीं भाग चलें। कश्मीर चलेगा? इन दिनों मंजुलि भी कश्मीर में ही है। रहने की कोई असुविधा नहीं होगी। मंजुलि के पिता वहां बड़े अफसर हैं। उन्होंने मुझे निमंत्रण भी दिया है। चल, कश्मीर ही चला जाय।'

परसों ज्योतिष ने ही रिजर्वेशन के दो टिकट खरीदकर मुझे दिये थे और कहा था कि आज ठीक समय पर वह टैक्सी लेकर आ जायेगा। मैं दाढ़ी बनाकर, सूटकेस सजाकर बैठा था, पर ज्योतिष का कोई पता नहीं था। ज्योतिष

गवर्नमेन्ट फ्लैट में एक कमरा लेकर रहता है। उसके यहां फोन भी है। मैंने उसे फोन किया पर फोन बजता ही रहा। इसका मतलब, वह घर में नहीं है। ट्रेन का समय हो गया। फिर भी वह नहीं आया। एक बार फिर फोन किया, तब भी फोन बजता ही रहा। जरूर घर पर नहीं है। दोनों टिकट मेरे ही पास थीं। एक टैक्सी बुलवाकर मैं अकेला ही स्टेशन चला गया। सोचा, शायद वह स्टेशन पर ही मेरा इन्तजार कर रहा हो। लेकिन नहीं। वह स्टेशन पर भी नहीं था। कहीं ट्रेन ही न छूट जाय। दो बार समूचे स्टेशन के चक्कर लगाये, अच्छी तरह खोजा, पर नहीं मिला। चाहता तो मैं अकेला ही कश्मीर जा सकता था पर उसको छोड़कर जाना क्या उचित था? मैं नहीं गया। स्टेशन से ही उसके फ्लैट पर पहुंचा। देखा, उसके कमरे में ताला लगा हुआ था। कहां गया, यह कोई नहीं बता सका। कलकत्ता शहर में कोई किसी की खबर नहीं रखता। यहां तक कि बगल के कमरे में रहनेवाला भी नहीं।

मैं भी एक गवर्नमेन्ट फ्लैट में ही एक कमरा लेकर रहता हूं। मेरे पास भी फोन है। घर आकर फिर एक बार ज्योतिष को फोन करता हूं। पर फोन बजता ही रहा लगातार। ज्योतिष घर में नहीं है। मामला क्या है?

□

मैं हड़बड़ाकर बिस्तर पर उठ बैठता हूं। खा-पीकर मैं सो गया था। मेरा फोन बज रहा है।

'हैलो, कौन?'

'मैं, ज्योतिष।'

'अरे तुम, यार मामला क्या है?'

'भई, मैं तो चला आया हूं यहां.....'

'कहां? कश्मीर? प्लेन से? मुझे छोड़कर चला गया? बहुत ताज्जुब की बात है!'

'तुम्हें लाना सम्भव नहीं था। बड़ा अद्भुत है यह देश!'

'बहुत ही खूबसूरत सीनरी है न? कश्मीर तो पृथ्वी का स्वर्ग है। सीनरी तो अच्छी होगी ही। लेकिन मुझे छोड़कर चला गया तू!'

पहल यहां आया तब देखा कि चारों तरफ निर्जन और उजाड़ है। कहीं कोई नहीं है। विराट देश, विराट आकाश, विराट मैदान, विराट दिगन्त लेकिन कहीं कोई नहीं है। मैं पैदल चलने लगा। थोड़ी दूर पैदल चलने पर देखता हूं कि लोगों का एक झुंड मेरी तरफ दौड़ा आ रहा है। मैं डर गया लेकिन भाग नहीं सका। चारों तरफ खुली जगह थी। छिपने का कोई स्थान नजर नहीं आया। वे लोग मेरे पास आकर पूछने लगे, 'आप बंगाली हैं?' मैंने कहा, हां।' उन्होंने कहा, 'तब आइये हमारे साथ। हमलोग मुक्तिवाहिनी के लोग हैं। पाकिस्तानी फौज को मार भगायेंगे। वे लोग यहां भी पहुंच गये हैं पर यहां भी उन्हें टिकने नहीं देंगे। यहां से भी मार भगायेंगे उनको। आप आइये हमारे साथ।' उनमें से किसी के हाथ में दाव, किसी के कुदाल, किसी के बन्दूक, किसी के तलवार, किसी के लाठी आदि हथियार थे। किसी के हाथ में कुछ भी नहीं था। जिनके हाथ में कुछ भी नहीं था वे कह रहे थे, 'हमारे पास हमारे दांत हैं, नाखून हैं, मन की ताकत है, हाथों के मुक्के हैं तथा लातों की मार है। आप भी चलिये हमारे साथ। चलिये, चलिये। और देर करने का समय नहीं है।'

"पाइपगन की गोली से ।'

"किसने मारा तुम्हे ?'

"किसने मारा यह जानता हू पर उसका नाम नही बताऊंगा । वह मेरा दोस्त है । अपनी भूल वह खुद ही बाद में महसूस करेगा । मैं—'

उसका गला भर आया ।

अचानक उधर से फोन की लाइन कट गयी ।

'हैलो, हैलो !'

पर कोई जवाब नही मिला ।

■ ■ ■

गणतांत्रिक

गजेन्द्रकुमार मित्र

० ० ० ० ०

नहीं, खाने-पीने का तो आजकल कोई सवला ही नहीं उठता। वो दिन गये। विमल के पिता बताया करते हैं कि पहले के दिनों में म्युनिसिपैलिटी के इलेक्शन आते ही लड़कों के चाय-नाश्तों से उनकी मां-मौसियों को छुटकारा मिल जाता था। एक महीने से भी अधिक, कभी-कभी तो दो-तीन महीने पहले ही किसी-किसी उम्मीदवार का ऑफिस खुल जाता था। वहां सुबह-शाम ही नहीं, हर वक्त चाय-नाश्ते का खासा इन्तजाम होता था। किसी के घर से (घर में बनाने का इन्तजाम होता तो) पूड़ी तथा आलू की सब्जी आ जाती। कोई दुकान में ऑर्डर देकर जलेबी और समोसे मंगवा लेते थे। उस समय भाव ही क्या था भला। एक पैसे का एक समोसा तथा एक पैसे की दो जलेबी। फिर अगर ऑर्डर देकर बनवाया जाता तो रुपये के अस्सी या किसी-किसी दुकानवाले तो छोटी साइज बनाकर रुपये के सौ समोसे भी बना देते थे।

वोट लेने के दिन का तो कहना ही क्या ? प्रत्येक बूथ के आस-पास उम्मीदवारों के कैम्प लगते । वहा टोकरों-के-टोकरे पूड़ी तथा बुंदिया और गमले भर-भरकर आलू की सब्जी रात से ही आनी शुरू हो जाती थी । कौन-कौन खा रहे हैं, कितना खा रहे हैं, कौन-से प्रार्थी के वालंटियर किसके कैंप में खा रहे हैं, जो लोग खा रहे हैं वे सभी वालंटियर ही हैं कि नही, यह सब देखने की किसी को फुरसत नही होती थी ।

अब सब कुछ बदल गया है ।

आज-कल तो चाय और बिस्कुट ही इष्ट-देवता हो रहे हैं । जो भी मिल जाय, उसी से काम चलाना पड़ता है । बहुत बार तो बिस्कुट भी अच्छी कम्पनी के नही होते । 'विशुद्ध ब्राह्मण की दुकान' के बिस्कुट तो कभी-कभी ही नसीब हो पाते हैं । जो दो-एक बहुत विश्वस्त वालंटियर होते है उनको चुपचाप घर ले जाकर खिलाया जाता है अब तो । यहा तक कि खास इलेक्शन के दिन भी (आजकल तो धर-पकड होती है, मतलब दो दिन पहले से ही कनवासिंग बन्द करनी पड़ती है। बूथ से एक सौ गज की दूरी तक उम्मीदवारो को कैंप लगाने की भी मनाही है) पहले की तरह तली हुई पूड़िया और मास की बात तो दूर, आलू की सब्जी तक का इन्तजाम नही होता । कूपन दे दिया जाता है जिससे कि मोहल्ले की चाय-दुकान मे जाकर सिर्फ चाय और टोस्ट ले सकते हैं ।

अब तो निर्वाचन का अधिकतर काम पार्टी के हाथ में होता है । पार्टी के वालंटियर ही मेहनत करते हैं, वे संख्या में भी बहुत होते हैं, अतः उन सभी को खिलाना-पिलाना संभव नही होता ।

नहीं, अब वह आकर्षण तथा लालच नहीं रहा । निर्वाचन के बाद जीतने पर अवश्य ही कोई-कोई उम्मीदवार अपने खर्च से कुछ खास घनिष्ठ व्यक्तियों को खिलाते हैं लेकिन किसी-किसी पार्टी के विधान में तो वह भी निषिद्ध होता है । विमल के ताऊ कहा करते हैं, नौबतखाने में तूती की आवाज को कहावत सुनी है न ? आज-कल किसी भी उम्मीदवार के लिये काम करना ऐसा ही है । सारी-सारी रात जागकर दीवारों पर लिखना और पोस्टर चिपकाना, दिन शाम को जुलूस निकालना, गला फाड़कर नारे लगाना, फिर दल नेताओं का अनुसरण करना, और वापस कैंप में लौटने पर मिलते हैं सिर्फ चाय-बिस्कुट

या फिर चाय-टोस्ट । पूड़ी, आलू की सब्जी और बुन्दिया तो एकदम स्वप्न की सी बात लगती है ।

विमल इस घर का खाकर उस घर की रखवाली करनेवालों में से नहीं है । किसी एक पार्टी के नाम के साथ जुड़ना भी पसन्द नहीं है । वह चाहता है—चाहे इसके लिए कितने भी प्रयत्न क्यों न करने पड़ें—उन सभी को कुछ-न-कुछ ओब्लाइज्ड करके रखे । यानी उन तीनों ही मुख्य प्रार्थियों को जिनको हिन्दी में 'उम्मीदवार' कहा जाता है ।

यह काम उतना सहज नहीं है, यह वह अच्छी तरह जानता है। और यही कारण है कि इसमें उसे इतना उत्साह महसूस होता है । दोपहर को प्रदीप सरकार के घर जाकर बोल आयेगा, 'नहीं माटू दा । मैं आपके जुलूस में नारे लगाने के लिये नहीं जाऊंगा । चाहे आप नाराज हों या मुझ पर गुस्सा ही करो । क्योंकि मुझे लगता है, अलग रहकर मैं उससे बहुत बड़ा तथा बहुत महत्वपूर्ण कुछ कर सकूंगा । मैं निर्मल माइति के कैंप में बराबर आता-जाता रहता हूं । वे जानते हैं कि मैं उनका खास सपोर्टर हूं, अतः दिल खोलकर मुझसे सारी बातें करते हैं । वे सब बातें, यानी इलेक्शन के लिये उनकी क्या टैक्टिक्स हैं, बीच-बीच में अगर आपको बताता रहा तो उसी में आपका अधिक लाभ होगा ।' लेकिन प्रदीप सरकार भी घाघ प्रकृति का व्यक्ति था । उन्होंने भौंहों में बल डालकर कहा, 'तभी हमारे कैम्प में आते-जाते हो और हमारी बात उन्हें बताते हो जाकर ! कौन-सी बात सच है ?' विमल जरा-सा भी विचलित नहीं हुआ । साहित्यिक भाषा में अगर कहा जाय तो उसके चेहरे की रेखाओं में तिल भर भी कम्पन नहीं दिखा । हंसकर ही जवाब दिया उसने, 'अच्छी बात है । अगर आपको यही शक है, तो एक बार परीक्षा लेकर देख लीजिये । यह काम और किसी के लिये मुश्किल हो सकता है, लेकिन आपके लिये नहीं । और मेरे क्या दो सिर हैं जो आपके साथ ऐसी बेईमानी करूंगा ? ऐसा करने का परिणाम क्या मैं नहीं जानता ? या चारों ओर की घटनाओं से मैं अनभिज्ञ हूं ?'

प्रदीप सरकार आश्वस्त हो जाते हैं, तथा सस्नेह विमल की पीठ थपथपाते हैं । निर्मल माइति भी आश्वस्त हो जाते हैं ।

निर्मल से वह कहता, 'मैं आपके पास आकर आपका काम नहीं कर रहा इससे बुरा न मानियेगा, हाबू दा । यह न सोच बैठना कि मैं उस दल का आदमी हूं ।

प्रकट रूप से यहा काम करने पर वे लोग सतर्क हो जायेंगे। फिर तो मुझे उनकी एक भी खबर हाथ नहीं लगेगी। अभी तो वे मुझसे दिल खोलकर बात करते हैं। कोई खास खबर मिलते ही यानी इस चुनाव मे उनकी क्या-क्या स्कीम हैं इसका पता लगते ही आपको बता दूंगा। इसी में आपका अधिक हित होगा।'

तब निर्मल माइति ने उसे चमगादड़ की कहानी सुनायी थी। वह इस प्रकार थी, 'एक बार पृथ्वी के सभी पशुओं एव पक्षियों में युद्ध छिड़ गया। बहुत जोर की लडाई छिड गई थी परस्पर। दोनों दल में से बहुत हताहत हुए। लेकिन चमगादड़ ने अपनी सुरक्षा का अच्छा उपाय ढूंढ निकाला था। एक तरफ तो उसके पंख हैं, वह आकाश मे उड़ता है, इसलिए पक्षी है; दूसरी तरफ वह स्तनपायी जीव है तथा अण्डे भी नही देता, अत वह पशु है। दर-असल वह पशु है या पक्षी, यह समझना मुश्किल है। इसी समस्या और बेनिफिट ऑफ डाउट के सुअवसर का लाभ उठाया चमगादड ने। जब पक्षी हारते तब वह पशुओं के पास जाकर कहता, 'मैं तो तुम्हारे ही दल का एक सदस्य हूं। मैं पक्षी थोड़े ही हूं। हा, पख हैं मेरे लेकिन जुड़े हुए हैं। अन्य पक्षियो जैसे नहीं हैं। और फिर हम तो मा का दूध पीकर बड़े होते हैं। अतः हमारे पशु होने में तो दो मत हो ही नही सकते।' और जब देखता कि पशुओ की हालत पतली हो रही है तब सीधा पक्षियो के पास पहुंचकर कहता, 'भई, हम आकाश में उड़ते हैं, पेड पर वास करते हैं। जन्तु नाम का हमारा कोई सबधी भी हो, ऐसा सुना है क्या आपने कभी?' इसी तरह दोनों दलो को धोखा देकर खुद का बचाव कर रहा था वह, लेकिन एक दिन जब दोनों का झगडा खत्म हो गया, आपस मे सन्धि हो गई तब दोनों दलो ने ही चमगादड का बहिष्कार कर दिया। उसकी चालाकी को दोनो पक्षो ने पकड़ लिया था। अब वह जमीन पर उतरता तो पशु नाखून और दांतो से उस पर आक्रमण करने और आकाश में उड़ने पर पक्षी चोंच मारते। इसीलिये चमगादड़ दिन मे किसी उजाड़, सूने खंडहर में दुबका रहता है। दिन मे वह बाहर नही निकलता। रात को सब के सो जाने के बाद चुपके से बाहर निकलता है और मनुष्य के बाग से फल-फूल चोरी करके खाता है।'

यह कहानी सुनने के बाद भी विमल के चेहरे की एक रेखा तक नहीं कांपती है। वह उसी तरह हंसकर कहता है, 'ठीक ही तो है, आपलोगों के हाथों वह

'परिणाम तो निश्चित हो ही गया है, हाबू दा। नाखून और दांत की क्या बात है, उनसे फिर भी बचा जा सकता है, आपलोगों के पास तो पाइपगन, पिस्तौल, छुरा आदि भी मौजूद हैं। चमगादड़ को दंड देने में देर ही कितनी लगेगी ?'

इसके बाद निर्मल माइति के लिए उससे हैण्ड-शेक करने के अलावा कोई चारा ही नहीं था।

इन सब में तृतीय उम्मीदवार ही कुछ दुर्बल था। वह था हरीश भण्डारी। दुर्बल का मतलब अहिंसक दल का उम्मीदवार। उनके न नाखून तेज हैं न दांत, यहां तक कि वे अपनी आंखें भी बन्द ही रखते हैं। फिर भी बैलेट-बॉक्स का रहस्य कौन समझ पाया है ? यही सोचकर विमल उसे भी कभी-कभार चुपके से मोहल्ले की गतिविधि से वाकिफ करा आता; और दे आता था कुछ उपदेश।

हरीश बाबू के जीतने की उम्मीद सौ में से दस प्रतिशत ही थी, फिर भी अगर बिल्ली के भाग से ही छींका टूटे तो जितनी-सी बेगार कर रहा है उसके बदले भी बहुत-कुछ दावा कर सकता है। हां, नहीं जीता तो कोई बात ही नहीं।

विमल का अधिक आना-जाना उन्हीं दोनों यानी प्रदीप सरकार और निर्मल माइति के कैंप में ही था। इसके अलावा, यही दोनों परस्पर समान प्रतिपक्षी थे। इसलिए विमल सचमुच ही प्रदीप की कुछ-कुछ गुप्त योजना निर्मल को और निर्मल की गुप्त चाल प्रदीप सरकार को बताने लगा। इससे दोनों की ही आस्था और विश्वास उस पर बढ़ा इसमें शक नहीं, पर दोनों ही सतर्क भी हो उठे थे अपनी-अपनी गुप्त योजना के प्रति। उनकी कुछ बातें आउट हो जाने से उन्हें शक होने लगा कि उनके दल का कोई ऐसा व्यक्ति है जो उनके साथ सांघातिक रूप में विश्वासघात कर रहा है। वह कौन हो सकता है ? किसकी हिम्मत है इतनी ? दोनों दलों के सामने प्रधान समस्या यही थी। एक बार पता लग जाय तो फिर उसका उचित इन्तजाम कर देंगे वे। विश्वासघाती को किस तरह की सजा देनी चाहिये यह वे अच्छी तरह ही जानते हैं।

विमल भी इतना लापरवाह नहीं था उस ओर से। यह आग से खेलना था। बल्कि आग से भी भयानक था यह खतरा। आग से जलकर फिर भी कोई-

कोई बच जाता है। यह खेल तो काले विषधर से खेलने के समान था। वह भी बहुत फूंक-फूंककर कदम रख रहा था। जो मंत्रणा बहुत ही सीमित विश्वासी व्यक्तियों के सामने होती उसे वह कभी किसी के सामने प्रकट नही करता, क्योंकि ज्यादा लोग सन्देह की परिधि मे हो तो स्वयं बहुत-कुछ निरापद रहा जा सकता है, पर संकीर्ण घेरे मे फंसने से ही मुसीबत आ जाती है।

साहसिकता के खेल में भी एक अद्‌भुत नशा होता है। जो सपेरे काले एवं गोखरे साप को लेकर खेल करते हैं उन्हे कोई अन्य सुविधाजनक निरापद जीविका मिलने पर भी वे उसे स्वीकार करेंगे कि नही, इसमे सन्देह ही है। लेकिन इस नशे की झोक में जब मनुष्य अंधा हो जाता है तो उसका [illegible] हिसाब बराबर हो जाता है। नहीं तो कुमुद चौधरी जैसा पक्का शिकारी पचास के करीब बाघों का शिकार करने के बाद ऐसी [illegible] भूल क्यों करता? वह खुद ही कितने लोगों से कहा करता था कि [illegible] का कभी विश्वास नही करना चाहिये। मर गया है कि नही, इस बात का पूरी तरह विश्वास किये बगैर उसके पास कभी नही जाना चाहिये। और खुद वही घायल बाघ के पास जाकर अपने प्राण दे बैठा।

सभी मामलों मे ऐसा ही होता है। जैसे रेस का पक्का खिलाड़ी दूसरो को सही घोड़ा बताकर भी खुद गलत घोड़े पर दाव लगाकर सर्वस्व हार बैठता है।

विमल भी आखिर खुद को सम्हाल नही सका। प्रदीप सरकार के दल ने तय किया था कि जो जाली वोट डालेंगे वे बाये हाथ की तर्जनी में वेसलिन या बोरोलिन लगाकर जायेंगे जिससे स्थायी निशान रूमाल मे पोंछने से ही [illegible] हो जाय। जब यह मंत्रणा तय हुई तब प्रदीप सरकार के [illegible] व्यक्ति और मौजूद थे। एक प्रदीप सरकार का लड़का [illegible], [illegible] बड़ा साला, एक उनकी पार्टी का सेक्रेटरी, [illegible] हीं विश्वसनीय और दाहिने हाथ जैसा [illegible] विमल।

अतएव यह सवाद जब निर्मल [illegible] सरकार के कैंप में पहुंचा तब उन लोगों की [illegible] ही था। लेकिन उनलोगों ने न तो यह बात [illegible]

कुछ जानते हैं और न उत्तेजना ही जाहिर की। वे तो स्तब्ध एवं स्तंभित-से हो गये थे। सभी के मन में एक कुटिल संदेह एवं उत्तेजना फैल गई थी।

अगर उस समय भी वह सम्हल जाता तो अच्छा रहता पर विमल यहीं पर चूक गया।

उनकी उस स्तब्धता को विमल ने अनभिज्ञता समझ लिया। उसने समझा कि इन लोगों को कुछ भी पता नहीं चला है, अतः शक होने की कोई गुंजाइश नहीं है। फिर से निःशंक हो उसने दोनों के ऑफिस में आना-जाना शुरू कर दिया। हां, प्रकट में नहीं आता-जाता था, उसी तरह अन्तरंगता से चुपचाप जाता था। उसने मन-ही-मन अपनी इस चतुराई की तारीफ भी की।

पर इसी बीच उधर निर्मल माइति का दल भी सतर्क हो उठा। विमल द्वारा दी हुई गुप्त खबर से उनको बहुत ही लाभ पहुंचा था लेकिन साथ ही वे विमल की ओर से शंकित भी हो उठे थे। जो उनका इतना अंतरंग होकर भी (अगर अंतरंग नहीं होता तो यह सब बातें उसे क्यों बतायी जातीं!) उनके साथ इतना विश्वासघात कर सकता है उस पर किसी को भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

इसीलिये माइति-दल की चाल एवं योजना के बारे में वह कुछ भी नहीं जान सका। निर्मल माइति ने एक ऐसी योजना बनाई थी जिसकी प्रदीप-दल के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे। बहुत ही जबर्दस्त योजना थी।

और उसका पता चला ठीक वोट डालने के वक्त।

वह उस दिन किसी बूथ के नजदीक भी नहीं फटका। खुद वोट डालने भी नहीं गया। जो कुछ उसने सुना, बस लोगों के मुंह से ही सुना। जितने मुंह उतनी बातें हो रही थीं। फिर भी एक बात साफ थी कि उन्होंने डर दिखाकर ही बाजी मात की थी। किसी ने कहा, रिवाल्वर दिखाकर पोलिंग ऑफिसरों से बैलट पेपर छीन लिये और अपनी इच्छानुसार वोट दे दिये। किसी ने कहा, जाली बैलट पेपर छपवाकर लाये थे। किसी से सुना कि बैलट बॉक्स ही अदल-बदल कर दिये। सबसे मजेदार जो बात विमल ने सुनी वह यह थी कि माइति-दल के गुप्त गुण्डे, क्यू लगाये खड़े वोटरों के कानों में चुपचाप बोल गये थे, 'तुमलोगों की गर्दन पर एक सिर भी मौजूद है, लेकिन उस सिर को अगर सही-सलामत रखना चाहते हो, तो अच्छी तरह सोच-समझ कर ही वोट

देना ।' आदि-आदि ।

हो सकता है, यह सब अफवाह ही हो । जिसका जैसा जी चाहा, उसने वैसी बात उड़ा दी । लेकिन फिर भी यह निश्चित था कि उन्होंने कोई जबर्दस्त चाल अवश्य चली है । पर क्या चाल थी निर्मल माइति की, इसे विमल नहीं पकड़ सका । जानने का मौका ही नहीं मिला, इसी का अफसोस था विमल को ।

मौका नहीं मिला इसीलिये रातों-रात घर-गांव छोड़कर उसको भागना पड़ा ।

वोटरों की गति देखकर, या फिर बूथ के भीतर मौजूद अपने आदमियों के मुंह से विवरण सुनकर, प्रदीप सरकार अपनी भाग्यलिपि साफ पढ़ सकता था । इसीलिये ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जा रहा था, ज्यों-ज्यों सूर्य अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहा था, वोट डालने का समय ज्यों-ज्यों समाप्ति की ओर पहुंच रहा था, त्यों-त्यों ही उनके दल की मुख-मुद्रा काली एवं क्रूर होती जा रही थी । चेहरे पर भयानक कठोरता लिए वे लोग सरगर्मी से विमल को ढूंढ़ने लगे ।

इस पराजय का एकमात्र अपराधी वे विमल को ही ठहरा रहे थे । उनकी धारणा थी कि विमल सब बातें जानता था । उनकी गुप्त योजना उसने निर्मल माइति को बता दी, लेकिन निर्मल माइति की एक भी बात उन्हें नहीं बतायी ।

माइति के दल पर उन लोगों को उतना क्रोध नहीं था । होने का कोई कारण भी नहीं था क्योंकि सभी अपना स्वार्थ देखते हैं और यह स्वाभाविक भी है, लेकिन विश्वासघातकता दूसरी बात है । विमल अवश्य ही माइति-दल का स्पाई था । प्रदीप का मित्र एवं विश्वासपात्र बनकर उसने गुप्त खबरें संग्रह कीं और उधर चालान कर दीं । उधर की दो-एक फालतू खबरें जरूर ले आया था, लेकिन मुख्य योजना की कोई आंच नहीं आने दी ।

ऐसे अपराध की क्षमा नहीं मिलती । इतना बड़ा विश्वासघात ! स्पाई सभी देशों में, सभी तरह की राजनीति में घृणित समझे जाते हैं ; और सभी देशों में इनके लिए दंड भी एक-सा है, यानी मृत्यु । इसके अलावा, मानवता की

फिर किसका सत्यानाश कर बैठे ।

अतएव —

और इस अतएव की प्रतीक्षा में बैठा नहीं रहा विमल । जो कपड़े पहने था उन्हीं में घर से भाग गया । सिर्फ घर से नहीं, बांगला देश से ही भागना पड़ा था उसे । वह जानता था कि इस देश में कहीं भी रहने पर ये लोग किसी-न-किसी दिन उसे ढूंढ़ ही निकालेंगे ।

रातों-रात टैक्सी करके अंडाल आया और उसी रात को एक्सप्रेस पकड़ सीधा राउरकेला, अपने बड़े भाई की ससुराल, जा पहुंचा । हालत उसकी शोचनीय हो रही थी ।

कलकत्ता में भी बेकार ही था, फिर भी ट्यूशन करके खुद का खर्च किसी प्रकार चला लेता था । पर यहां बिल्कुल असहाय एवं खाली जेब था । इस हालत में रिश्तेदारों के यहां जाने पर शर्म की कोई सीमा नहीं रहती लेकिन और उपाय भी क्या था ? बंगाल से बाहर और कोई अपना था भी तो नहीं । लाज-शर्म की पर्वाह न करके ट्यूशन ढूंढ़ने के अलावा उसे और कोई उपाय नहीं सूझा । आत्म-सम्मान को बचाने के लिये झूठी कहानी गढ़ने में उसे कोई असुविधा नहीं हुई, क्योंकि कलकत्ता की बिगड़ी हुई स्थिति और रात-दिन होनेवाली दुर्घटनाओं के बारे में सभी को पता था । अतः इस तरह भाग आने का एक झूठा इतिहास कायम करने में उसे जरा भी देर नहीं लगी ।

दीनता स्वीकार करने के बावजूद यहां आने के बाद से वह थोड़ी निश्चिंतता भी महसूस करने लगा ।

लेकिन एक बात विमल ने नहीं सोची थी कि, इस पराजय की ग्लानि की आग कैसा भयंकर रूप धारण कर सकती है ! प्रतिशोध की भावना कितना उग्र रूप धारण कर सकती है !

वह समझा दस-बारह दिन बाद ।

अखबार के मार्फत पता लगा उसे ।

विमल का छोटा भाई अमल बी० ए० में पढ़ता था । बेचारा बहुत ही भला लड़का था । रात-दिन अध्ययन में ही व्यस्त रहता था और उसकी आन्तरिक अभिलाषा भी बस परीक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करना ही थी । राजनीति में उसकी कोई रुचि नहीं थी ।

विमल को न पाने के क्षोभवश प्रदीप सरकार ने सम्भवत: उसी से बदला लिया है। पता नहीं, किन लोगों ने उसका खून कर उसे तालाब किनारे फेंक दिया था।

और भी खबर मिली। ऐसी खबरें ठीक-ठीक पहुंच भी जाती हैं। इस प्रहार को अपना अपमान समझकर, निर्मल माइति के दल ने अमल को अपने दल का व्यक्ति घोषित कर दिया है, और उसके शव को फूल-मालाओं से सजाकर सारे मोहल्ले में जुलूस घुमाया है तथा बदला लेने के लिये प्रदीप के दल को डरा-धमका रहे हैं।

बेचारा अमल ! कितना भला और अच्छा लड़का ! बहुत ही अच्छा लड़का था अमल।

इस हत्या का कोई प्रतिकार भी नहीं लिया जा सकता, यह विमल अच्छी तरह जानता है। साक्षात् देखने के बावजूद कोई नहीं मानेगा। कोई गवाही नहीं देगा। कोई पकड़ा नहीं जायेगा।

लेकिन अगर प्रतिकार लिया भी गया तो उससे फायदा क्या होगा ?

मान लो, प्रदीप के दल के किसी सदस्य को निर्मल माइति के लोग 'साफ' कर देते हैं तो प्रदीप दुवारा उनसे बदला लेने की कोशिश करेगा। उनको पहले से ही शक है कि विमल माइति-दल का स्पाई है। अब अमल को उस दल से जोड़ने से यह और भी प्रमाणित हो जायेगा।

विमल क्रमश: अपने बड़े भाई और पिता के बारे में सोचता है। आठ साल के भतीजे के बारे में सोचता है।.........

कहीं इनमें से भी कोई उनकी चपेट में न आ जाये।

तो क्या वह लौट जाय ?

विमल क्रमश: इस बारे में सोचता-विचारता है। हिसाब करता है—लाभ और नुकसान का।

खुद लौटकर अपने कर्मों का फल भुगतने से ही यह आग बुझेगी क्या ?

सोचता है और अपेक्षा कर रहा है किसी और एक खतरनाक खबर की।

■ ■ ■

सर

दिव्येन्दु पालित

○ ○ ○ ○

रमन कमरे में घुसते ही बोला, 'सर, मैं बहुत ही मुसीबत में फंस गया हूं। आप मुझे बचा लीजिये।'

मैं घबरा गया। रमन के इस तरह अचानक चैम्बर में आ घुसने से नहीं, उनके बात करने तथा खड़े होने के ढंग से। टेबिल के उस ओर पास-पास तीन कुर्सियां रखी थीं। चैम्बर में घुसकर बात कहने से पहले उसने एक चेयर को कसकर पकड़ लिया था और अब चेयर के सहारे वह इस तरह खड़ा था कि चेयर की पीठ उसके पेट में धंसी जा रही थी। कुर्सियों के पायों में शब्द-निरोधक कुशन लगाये हुए थे, नहीं तो इसी क्षण एक विकट शब्द होता।

लेकिन इन सब बातों को लेकर रमन जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसकी आंखें दिग्भ्रांत-सी हो रही थीं। नजरें इस कदर स्थिर थीं कि वह मेरे सिवाय और कुछ नहीं देख रहा था। ऐसे अवसरों पर जैसी होनी चाहिये, ठीक वैसी ही अभिव्यक्ति व्यक्त कर रहा था वह। इस वक्त वह मंजा हुआ अभिनेता

लग रहा था।

उसको साधारण मन:स्थिति मे लौटने में थोडा समय लगा। रमन अभिनय कर रहा हो, ऐसी बात नही थी। ऑफिस में मैं उसका बॉस था तथा वह मेरा सबोर्डिनेट, इस लिहाज से यह निश्चित था कि रमन बेमौके मुझसे मजाक करने नही आया था। मैंने घबराकर पूछा, 'क्या हुआ ? तुम काप क्यों रहे हो ? बैठो!'

'सर, मैं बहुत मुसीबत में पड़ गया हू।' कहते-कहते अचानक रमन चुप हो गया। एक साथ ही ढेर सारी बातें जुबान पर आ जाने से जिस तरह आगे-पीछे कहने की सभी बातें गड्ड-मड्ड हो जाती हैं, उसी तरह रमन भी दुविधा मे पड़ गया। अपनी बातें कहना भूल गया, मानो जुबान तालू से चिपक गई हो। फिर किसी प्रकार कोशिश कर बोला, 'सर, मेरी पत्नी बाथ-रूम मे गिर पडी है। वह सात महीने से एडवांस स्टेज में थी, बहुत ब्लीडिंग हो रही है, सर। मैं घर कैसे जाऊ ? मिलिट्री ने मौहल्ला घेर रखा है। हडताल चल रही है। कोई भी टैक्सी जाने को तैयार नही। बसें भी बन्द हैं।'

रमन और भी बहुत कुछ कहना चाहता था, पर कुछ न कहकर हठात् वह मेरी टेबिल की ओर खिसक आया। उसके रग-ढग देखकर लगा कि अब वह मेरे पैर पकडेगा। मैं फुर्ती से उठ खड़ा हुआ और उसका हाथ पकड लिया। 'रमन, होश मे आओ। बोलो, मैं तुम्हारी किस तरह मदद कर सकता हू ? तुम अभी तक ऑफिस मे क्यों बैठे हो ? एम्बुलेन्स को खबर करते तो अच्छा रहता। पैदल जाते तब भी अब तक पहुंच सकते थे। अच्छा, तुम्हारा घर कहां है ?'

'बारानगर।'

अचानक दीवार से पीठ सटाकर रमन कुछ संयत हुआ, मानो उसने खुद को सम्हाल लिया हो। सम्भवतः इतनी देर बाद अब उसको ख्याल आया हो कि मेरे साथ उसका क्या सम्बन्ध है और उस कारण वह जितना नत हुआ है उससे और ज्यादा नही हो सकता। शायद मेरे उपदेशों ने भी उसे कुछ निराश कर डाला था। गलती मेरी ही थी। यह मैं कैसे कह सकता हूं कि मैंने जो कुछ कहा, वैसा रमन ने नहीं सोचा या कोशिश नहीं की ? बहुत ही मुसीबत में पड़े बिना रमन मेरे पास नही आता। उसकी और मेरी श्रेणी

ही अलग-अलग है। कौन किसको कितना पसन्द करता है या नहीं करता, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं।

नहीं, इस तरह की बात कहना उचित नहीं था। हो सके तो इस वक्त उसकी मदद करनी चाहिये।

उसी वक्त मैंने अपने मन को स्थिर कर लिया। रमन मुझसे कैसी मदद चाहता है, यह समझने में मुझे मुश्किल नहीं हुई। घर पहुंचने की कोशिश व्यर्थ जाते देख शायद उसे खयाल आया हो कि मेरे पास एक गाड़ी भी है। मतलब कि मैं अपनी गाड़ी में उसको घर पहुंचा आऊं। जिद्दी एवं स्नॉब के रूप में मैं चाहे जितना भी बदनाम क्यों न होऊं, लेकिन निश्चित रूप से रमन अब भी मुझे इन्सान समझता है। पूरी तरह मामले पर गौर किया तो ठण्डे कमरे में भी मेरे माथे पर पसीना झलक आया। मैंने कहा, 'ठीक है, तुम नीचे जाकर खड़े होओ। मैं आ रहा हूं।'

रमन खुश हुआ या नहीं, यह मैं नहीं जान सका। वैसे भी मैं जानता था कि निराशा के अलावा इस वक्त उसके चेहरे पर और कोई भाव नहीं आयेगा। कमरे से निकलने के पहले उसकी ठण्डी नजरें मुझे छू गयीं।

ब्लीडिंग सुनकर ही मेरा शरीर कांप उठा था। सांस रुक-सी गई थी। सात महीने का भ्रूण गर्भ में लिये एक युवती बाथ-रूम में गिर गई है और उसके लिये कुछ किया नहीं जा रहा है, यह सब सोचने से ही बदन सिहर उठता है। मेरी एक बुआ इसी तरह इसी हालत में बाथ-रूम में गिर पड़ी थी। हॉस्पिटल पहुंचते-पहुंचते उसकी मृत्यु हो गई थी। अकस्मात् ही वह घटना याद आ जाने से मुझे जोर की झुरझुरी आ गई। रमन के कमरे में से जाते ही मैंने ड्राअर में ताला लगाया और जैकेट कंधे पर डाल मैं नीचे उतर आया।

शाम हो गई थी। घिरते अंधेरे में रमन बिल्कुल स्तब्ध-सा, प्रेत-छाया-सा, एम्बेसडर का सहारा लिये खड़ा था। इस वक्त वह अभिनेता-सा नहीं लग रहा था। उसकी तरफ देखते-देखते ही मेरे भीतर से एक दीर्घ-देही महापुरुष निकल आया और उसने रमन के कंधे पर हाथ रखा। रमन के कहे अनुसार तो घटना बहुत ही सीरियस लगी मुझे। एक-एक क्षण मूल्यवान महसूस हो रहा था। मेरी सहायता से अगर उसकी पत्नी स्वस्थ हो उठे तो क्या रमन

जीवन भर मेरे प्रति कृतज्ञ नहीं रहेगा ? यही सब सोचते-सोचते कार में बैठकर मैंने रमन के लिये पीछे का दरवाजा खोल दिया और कहा, 'आओ, गाड़ी में बैठो।'

रमन बिना कुछ बोले चुपचाप गाड़ी में बैठ गया। गाडी स्टार्ट होने में देर कर रही थी। रमन उकताकर बोला, 'सर, इंजन तो ठीक है न ?'

मैंने कुछ नहीं कहा। वास्तव में इस चिन्ताजनक वातावरण में भी मुझे मन-ही-मन हंसी आ रही थी। जिन लोगों को कभी कार में बैठना नसीब नहीं होता, वे सभी रमन की भाषा में ही बातें करते हैं। स्टार्ट होने में देर हो रही है, अत: इंजन खराब है! रमन ने भी शायद यही सोचा था। सीधे-सादे होते हैं उनके सिद्धांत। दरअसल उसका सोचना भी उचित था कि गाड़ी क्यों नहीं मनुष्य की तरह तत्पर होती! यही तो समय है उसके लिए कुछ कर दिखाने का!

रमन पीछे बैठा था। मेरे हाथ स्टीयरिंग पर थे। भीड़-भरे रास्ते में जितनी तेज चला सकता था उतनी तेज गाड़ी चलाने लगा मैं। मैं समझ रहा था कि गाड़ी में बैठकर भी वह आश्वस्त नहीं हुआ है। वह एक बार बांयी ओर से दायीं ओर खिसका; उसके बाद वापस बायीं ओर सरक आया। साइड-ग्लास को थोड़ा-सा नीचा करके मैंने वापस ऊपर कर दिया। रमन बहुत ही नर्वस फील कर रहा था। पीछे की सीट पर रमन का सीन ऐसा था मानो अंधेरे में रमन खुद से खेल रहा है। अपना एक काल्पनिक प्रतिद्वन्द्वी खड़ा कर लड़ रहा है तथा सोच रहा है कि उसे जीतना ही पड़ेगा। पार्क स्ट्रीट के मोड़ पर गाड़ी पहुंचते ही अचानक चौराहे की लाल बत्ती जल उठी। मैंने जोर का ब्रेक लगा गाड़ी रोकी। यह घटना बहुत स्वाभाविक ही थी, फिर भी रमन ने मुंह से उकताहट भरा शब्द निकाल ही दिया। शायद मुझे ही धिक्कारा था या फिर ट्रैफिक की बत्ती को। उस छोटी-सी ध्वनि से ही मानो सारे संसार पर उसका क्रोध जाहिर हो गया था। बीमार पत्नी एवं खुद के अलावा इस वक्त वह किसी भी तीसरे के अस्तित्व तक को मानने को तैयार नहीं था। इस वक्त शायद मैं भी उसके दिमाग से ओझल हो गया था। हुंह, होने दो। मैंने मन-ही-मन कहा, 'रमन, तुम निश्चित होकर बैठो। मेरी एम्बेसडर एवं मैं अभी तुम्हें पहुंचा देते हैं।'

अचानक रमन ने पूछा, 'सर, और कितनी देर लगेगी ?'

'देखो।'

टाई की गांठ मैंने ढीली कर ली। शायद आज बहुत गरमी थी। या हो सकता है, शायद रमन की उत्तेजना मुझमें भी प्रवेश कर गई थी। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा, 'अटेण्ड करनेवाले लोग तो होंगे न घर में?'

'मेरी बूढ़ी मां है। वह भला क्या केयर ले सकेगी! उसे तो ठीक से दीखता भी नहीं। बगल के मकानवालों ने मुझे फोन पर खबर दी और कहा कि डॉक्टर को बुलाना ठीक रहेगा; पर इस समय जैसी परिस्थिति है शहर की, उसमें भला डॉक्टर घर से क्यों निकलेगा?'

'रमन, इतना नर्वस होने की कोई बात नहीं है।'

फिर से चौराहे की लाल बत्ती जल उठी। ऐसे ही अवसर पर तो सावधानी बरतने की जरूरत होती है। इन सब कामों में साधारणतः मैं नियम-कायदे भंग नहीं करता। दो-एक मिनट में ऐसी कौन-सी देर होती है? लेकिन आज रमन के साथ होने की वजह से ही शायद समूचे शिष्टाचार ही मुझसे बगावत करने पर तुले थे। भीतर से एक अद्भुत प्रेरणा मिल रही थी आगे बढ़ने के लिये। उल्टे रास्ते से आती एक गाड़ी की नाक को लगभग छूता हुआ मैं द्रुत गति से रास्ता पर कर गया। रमन भी देख ले आज कि मैं भी कुछ कर सकता हूं। यों मैंने रमन की पत्नी को कभी देखा नहीं था, फिर भी इस समय मैंने अपने सामने उसका एक काल्पनिक चित्र बना लिया। पीड़ा से नीला पड़ा चेहरा लिये वह पति के लौट आने की प्रतीक्षा कर रही है। उसके और रमन के बीच में बाधास्वरूप खड़े हैं मिलिट्री, हड़ताल, अनिच्छुक टैक्सी, स्तब्ध बसें और एक पूरा निषिद्ध और शून्यप्रायः इलाका। मैं सोचने लगा, क्या अभी तक ब्लीडिंग बन्द नहीं हुई होगी? क्या अभी तक कोई डॉक्टर नहीं पहुंचा होगा? जिन्होंने फोन पर खबर दी थी क्या वे रमन की प्रतीक्षा में निश्चिंत बैठे होंगे? इस धरती पर इन्सानियत का क्या इतना अभाव हो सकता है कि किसी की असहायता और पीड़ा के प्रति मनुष्य इतना हृदयहीन एवं उदासीन हो जाय? अब मुझे ही देखो, बिना अपने किसी स्वार्थ के भी कितनी तत्परता से दौड़ा जा रहा हूं! इसी बात से पता लगता है कि मुझे कितनी चिन्ता है! मुझे तो लग रहा था कि एम्बेसडर में इंजन नहीं बल्कि मेरा हृदय ही धक्-धक् कर रहा है।

आज का दिन मानो रमन के लिये ही विशेष रूप से उदय हुआ था, या कि

मेरे लिये। इसे सयोग ही कहिये वरना शाम के बाद मैं ऑफिस मे क्यों रहता ? अगर सब ठीक-ठाक चला होता तो इस समय मैं शोभन-मीनाक्षी की मैरिज-एनिवर्सरी की पार्टी अटेण्ड कर रहा होता। यही तय भी था। 'सिन्स यू आर ए बैचलर,' दोपहर मे फोन करके मीनाक्षी ने कहा था, 'तुम जरा जल्दी ही आ जाना।' मैंने सोचा था, ऑफिस से सीधा ही उसके घर चला जाऊगा। पर जैसा जमाना आ गया है आज-कल, उसमे कोई भी काम क्या अपनी इच्छानुसार कर सकता है इन्सान ?

छुट्टी होने के थोड़ी ही देर पहले शोभन ने मुझे फोन किया था, 'वेरी सॉरी, फक्शन कैंसिल कर दिया है।'

'अचानक ऐसा क्यों ?'

'बात यह है कि इधर अचानक ही हड़ताल हो गयी है। अभी-अभी यहा जमकर लड़ाई भी हो चुकी है। हमारे घर के ठीक सामने ही छुरे मारने की दो वारदात हो चुकी हैं। दुकाने सभी बन्द हैं। इधर आना बहुत ही रिस्की है।'

मेरा मन खराब हो गया। जानता हूं कि आजकल चारो तरफ एक प्रकार की असंभव घटनाए घट रही हैं। चारो तरफ हत्या और रक्त और बम और छुरे और पाइपगन आदि ही नजर आते हैं। कपडे-लत्तो की स्टाइल बदलने की तरह ही जिन्दा रहने की स्टाइल भी रातो-रात बदल गयी है। बहुत रात गये जब बम फटने के धड़ाम–धड़ुम शब्द मेरे कानो में पड़ते तब मुझे यही महसूस होता कि जब अन्य सभी लोग सो जाते हैं तब कुछ लोग बाहर निकल पड़ते हैं; उनके दृष्टि-हीन शरीर पर सिर्फ जीभ-ही-जीभ उगी हुई हैं और उन जीभों को खून के अलावा कोई स्वाद रुचता नही है। क्या मैं दार्शनिक हो उठा हूं ? शायद। लेकिन बात बिल्कुल सही है कि आजकल अनुभूतिया भी इसी तरह असहाय बनकर आती हैं। इसके अलावा अन्य झमेले तो अपनी जगह हैं ही। यही उस दिन की बात है, एक जरूरी फाइल तैयार करने के लिये मैंने रमन को सुबह जल्दी ही ऑफिस बुलाया था। जल्दी यानी ऑफिस शुरू होने से भी कुछ पहले ही बुलाया था। मैं खुद आठ बजे से ही आकर बैठा रहा था। साढ़े दस बजे का एपॉइन्टमेंट था, रमन तब तक भी नहीं पहुंचा था। काम नही हुआ। रमन करीब बारह बजे आया। मैंने उसे चैम्बर मे बुला भेजा और फटकार लगायी, 'रमन, अगर यही रवैया रहा तो तुम्हारे विरुद्ध मुझे कुछ करना पड़ेगा। ऐसे गैर-जिम्मेदार लोगों से हमारा काम चलने का नहीं है।'

आदि-आदि याद नहीं और भी 'क्या-क्या कह गया था मैं।

रमन ने सिर झुकाये सब सुन लिया। उसके बाद बोला, 'सर, आप लोग गाड़ियों में चढ़कर चलते हैं, आप लोग इसे नहीं समझ पायेंगे। हमारे उधर बस बन्द है। ट्रेन भी बन्द है। पैदल चलकर किसी तरह यहां पहुंचा हूं। आप शौक से कर सकते हैं मेरे विरुद्ध रिपोर्ट।'

उसकी अंतिम बात में कुछ कटुता का भाव था।

यह तो उद्दंडता है। काम नहीं हुआ इसके लिये जरा-सा भी अफसोस नहीं है। सिर्फ कारण दिखाता है। यह रोज का ही धंधा हो गया है। रमन नहीं तो और कोई, कोई-न-कोई, कहीं-न-कहीं अवश्य ही अटक जाता है और ठीक समय नहीं पहुंच पाता। खास बात यह है कि इसके लिये कोई भी अफसोस महसूस नहीं करता। मेरा सारा बदन गुस्से से कांपने लगा था। पेपरवेट को मुट्ठी में भींचकर मैंने उससे कहा था, 'ओ के, यू मूव आउट।'

रमन चला गया। उसके विरुद्ध कोई नोट लिखूं या नहीं, इसी उत्तेजना और उलझन में दिन भर मिजाज खराब रहा। और फिर उस दिन की घटना को ही लो! लेकिन शायद उस दिन इतना क्रोधित होना ठीक नहीं हुआ। धीरे-धीरे मेरी शिराओं की उत्तेजना शांत होती जा रही है। मन खराब रहनेवाला भाव खत्म होता जा रहा है। बल्कि इस समय तो लग रहा है कि अच्छा ही हुआ जो पार्टी नहीं हुई, तभी तो हताश-परेशान रमन को मैं ऑफिस में मिल गया। मैं उस वक्त बैठा यही तो सोच रहा था कि शाम किस तरह व्यतीत की जाये? आफ्टरऑल, यह काम सबसे ज्यादा जरूरी है। मेरी तत्परता पर ही आज एक युवती का जीवन और मृत्यु निर्भर है। अच्छा ही है, कल मीनाक्षी के पास बैठकर बात करने का एक विषय मिल गया।

उसी वक्त एक नई चिन्ता ने मुझे दुविधा में डाल दिया। रमन के अनुनय-विनय पर चला तो आया हूं, लेकिन मैंने यह क्यों नहीं सोचा कि यह समय बिना सोचे-समझे उपकारी की भूमिका निभाने का नहीं है। हड़ताल के ही कारण जब शोभन की मैरिज-एनिवर्सरी की पार्टी में नहीं गया तब फिर अब क्यों जा रहा हूं? रमन ने भी तो कहा था, 'हड़ताल चल रही है। उपद्रवियों और संदिग्ध अपराधियों की खोज हो रही है। सारे मोहल्ले को मिलिट्री ने घेर रखा है।' जिधर मैं जा रहा हूं, क्या उधर रिस्क कम है! इस क्षण

मुझे रमन से अधिक स्वार्थी और कोई नहीं लगा। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये वह मेरा उपयोग कर रहा है। अपनी बीमार पत्नी को बचाने के लिये यह कोई भी जोखिम उठा सकता है, लेकिन मैं किस स्वार्थवश जा रहा हूं ? रमन के लिये ? क्यों ? सभी को पता है कि हमारी श्रेणी अलग-अलग है। ऑफिस में तो मैं तथा रमन एक-दूसरे के दुश्मन ही हैं। तो क्या इन्सानियतवश ? दयावश ? पता नहीं। शायद इन सभी से भिन्न भी कोई भाव-बिन्दु है जहां मैं और रमन एक हो जाते हैं।

शायद मैं कुछ अधिक ही दार्शनिक बन बैठा था। रमन ने मुझे जगा दिया।

'सर, अब बांयी ओर चलिये !'

स्पीड कम कर मैंने अपने चारों तरफ देखने के बाद गाड़ी को बायीं ओर घुमाया। 'यहां इतना अंधेरा क्यों है ? क्या हमेशा इसी तरह अंधेरा रहता है ?'

'नहीं, सर। सड़क के बल्ब फोड डाले हैं।' कहकर रमन क्षण भर को चुप रहा, फिर बोला, 'हमारा मौहल्ला तो सर, और भी खराब है। वहां रोज दो-एक मर्डर तो होते ही हैं। पन्द्रह दिनों में यह तीसरी बार हुई है हड़ताल।'

यहां सड़क चौडी होकर दो तरफ को मुड़ गई थी। बहुत दूर-दूर पर लैम्प-पोस्टों में झूलती एकाध लाइट जल रही थी। किसी-किसी मकान की खिड़कियों से भी रोशनी छनकर बाहर आ रही थी। इस तरह के प्रकाश से तो अन्धेरे का अहसास और भी बढ़ जाता है। किस्मत अच्छी थी कि चान्दनी रात थी। उसी रोशनी में आगे बढ़ने की बात सोची मैंने। रमन मेरी गर्दन पर झुकर आ रहा था। उसकी सांस मैं अपनी कनपटी पर स्पष्ट रूप से महसूस कर रहा था। मैंने महसूस किया कि बहुत देर चुप रहने के बाद वह फिर से अधीर हो रहा है। मैं वहां कोई आदमी ढूंढने की कोशिश में था पर कहीं कोई दिखाई नहीं पड रहा था। रात के आठ बजे से ही ऐसी स्तब्धता ! अचानक रमन ने कहा, 'सर, आपने मेरा बहुत उपकार किया है।'

'थैंक यू।' मैंने उद्विग्न स्वर में जवाब दिया। 'पहले घर पहुंच जाओ, वहां देखो क्या हालत है, तब यह सब बातें कहना।'

'हॉल्ट !'

यह आकस्मिक धमकी सुन मैंने शरीर की समस्त शक्ति से गाड़ी को ब्रेक

लगाकर रोका। देखा कि सिर्फ दस गज की दूरी पर दो सैनिक राइफल ताने खड़े हैं। रोशनी की कमी के कारण उनकी उपस्थिति का पता पहले नहीं लगा था। रमन नर्वस होते हुए बोला, 'लगता है, यहां भी वही हड़ताल और 'कूम्बिग' वाला मामला चल रहा है।'

'कोई और रास्ता नहीं है ?'

'मेन रोड को मैंने इसीलिये एवाइड किया था कि वहां भी कूम्बिग चल रहा है।............'

सैनिकों में से एक जहां था वहीं खड़ा रहा तथा दूसरा आगे बढ़ आया।

'हट जाओ ! जल्दी........'

मेरे सिर से सिर्फ एक हाथ की दूरी पर राइफल का मुंह था। रमन गाड़ी में ही खड़े होने की मुद्रा में था। उसने जल्दी से कहा, 'भाई, बहुत जरूरी काम है।'

लेकिन फिर वैसा ही कर्कश जवाब मिला, 'हट जाओ !'

मेरी नजर राइफल पर ही टिकी हुई थी। क्या करूं, समझ में नहीं आ रहा था। हठात् रमन ने मेरा कंधा जोर से दबाकर कहा, 'सर, अंग्रेजी में बोलिये तो समझ जायेगा।'

उत्तेजना एवं भय के मारे मेरी समूची देह से पसीना छूट रहा था, तब भी रमन की बात पर मुझे हंसी आ रही थी। मैंने कहा, 'कोई फायदा नहीं। कोई ऑफिसर वगैरह रहता तो उसको समझाया जा सकता था। अब तो इसी में भलाई है कि गाड़ी बैक करूं।'

धीरे-धीरे गाड़ी बैक की। मेरी आंखें राइफल पर से क्षण भर को भी नहीं हटीं। हमारी आंखों से उनके ओझल होने के साथ-साथ ही बम फटने का जोरदार धमाका सुनाई पड़ा—एक बार, दो बार, और प्रायः उसीके साथ-साथ चारों ओर से आती सुनाई दी तीखी-तेज ह्विसल की आवाजें। हमारे आस-पास एक भी आदमी दिखाई नहीं दे रहा था। अधिकांश घरों के खिड़की-दरवाजे बन्द थे। रात के आठ बजे हैं या दो, यह भी समझ में नहीं आ रहा था।

'यह जगह सेफ नहीं है। हमारा यहां से निकल जाना ही उचित है।'

'तब फिर ?'

'क्या और कोई रास्ता नहीं है ?'

रमन के मुंह से मानो बात नहीं निकल रही है। 'दाहिनी ओर से जाया जा सकता है, सर। उधर कोई ट्रबल नहीं है। जरा-सा आगे बढ़ते ही बड़ा रास्ता है। हां, जरा चक्कर पड़ेगा।'

'ठीक है। तो फिर वहां तुम उतर जाओगे न ?'

रमन ने कोई जवाब नहीं दिया। पीछे मुड़कर देखता हूं कि वह सीट पर अधलेटा-सा-पड़ा है और जल्दी-जल्दी सिर को हाथ से रगड़ रहा है।

'रमन, क्या हुआ ?'

'सर, कुछ समझ में नहीं आता। अगर अस्पताल ले जाना पड़ेगा, तो........?'

तो मैं क्या कर सकता हूं ? अब मुझे सचमुच ही गुस्सा आ रहा था। दांत-पर-दांत भिंच गये मेरे—सोचा, रमन, तुम हद से ज्यादा बढ़े जा रहे हो। अब तुम्हें स्वयं ही अपना कोई इन्तजाम करना होगा। मैं मजबूर हूं। शायद मेरे करने लायक कुछ नहीं बचा है।

'सर !'

'ठीक है चलो, दाहिनी ओर चला जाय। उधर भी ट्राई कर लें।'

फिर से गाड़ी को घुमाया।

कहीं पास ही जबर्दस्त गोलमाल हो रहा है। कानों में कितनी ही तरह के अस्वाभाविक शब्द सुनाई पड़ रहे हैं। दाहिनी ओर जाते-जाते मैं और भी अधिक शंकित हो उठा। किसी-किसी रास्ते के प्रत्येक कण में अस्वाभाविकता भरी होती है—यहां भी ठीक वैसा ही लग रहा था मुझे। चारों ओर सन्नाटा, अंधकार और हवा के झोंकों के साथ-साथ विविध प्रकार की रहस्यमय छायाएं हिलती-डुलती नजर आतीं। रमन ने कहा, 'इधर शायद कोई खतरा नहीं....'

मैं हंसा। इस तरह कहकर रमन खुद को ही आश्वस्त कर रहा था। शायद समझ रहा हो कि मैं अब उसके पास नहीं हूं। आधा घन्टा पहले उसने मुझे अपनी पत्नी के बाथरूम में गिर जाने की खबर दी थी। दुर्घटना के समय का अगर पता रहता तो रक्तपात के परिणाम का अनुमान किया जा सकता था।

ठीक उसी समय अप्रत्याशित रूप से वह घटना घट गई जिसके साथ इतनी देर

की चिन्ता-फिक्र या उत्तेजना का कोई सम्बन्ध नहीं था।

अंधेरे में से अचानक ही पांच-छः युवक प्रकट हुये। उनमें से एक सामने की ओर से गाड़ी पर कूद पड़ा। मैंने एक्सीडेन्ट की आशंका से तुरन्त गाड़ी रोकी। फिर तो पलक झपकते ही उन्होंने गाड़ी का दरवाजा खोला और भीतर आ बैठे।

'गाड़ी चलाओ ! जल्दी !'

अस्फुट आवाज और अंधेरे में अस्पष्ट चेहरे। आश्चर्य का प्रथम प्रहार सम्हाल-कर मैंने पूछा, 'मामला क्या है ? आप लोग इस तरह गाड़ी में कैसे आ बैठे ?'

'गाड़ी चलाओ।'

मैं प्रतिवाद करता उससे पहले ही गर्दन पर ठण्डी धातु के स्पर्श से मेरा शरीर बर्फ-सा हो उठा। आंख से देखे बिना भी मैं सब कुछ समझ गया। कलेजा मुंह को आ गया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि अब क्या करूं, क्या करना उचित है !

घटना की आकस्मिकता का शायद रमन पर भी गहरा असर हुआ था। थोड़ी देर तो वह स्तब्ध-सा चुप बैठा रहा। उसके बाद टूटे-फूटे शब्दों में बोला, 'मेरी पत्नी बहुत बीमार है। प्लीज, हमलोगों को छोड़ दीजिये।'

'ठीक है।' मैं गर्दन घुमा नहीं सकता था, लेकिन यह समझने में मुझे कोई असुविधा नहीं हुई कि यह आवाज किसकी है ? उसने मेरी गर्दन पर से रिवाल्वर हटाकर मेरा कॉलर कसकर पकड़ लिया और बोला, 'इस साले की पत्नी बीमार है ! इसको उतार दो।........'

'सर !'

रमन की कातर आवाज आई। मानो वह स्वर बहुत दूर से मुझ तक आ रहा है। 'सर-सर ! ....'

गर्दन पर फिर वही धातु का स्पर्श। मैं जानता हूं अब मुझे क्या करना है। जानता हूं कि मैं गाड़ी नहीं चलाऊंगा तब भी वह चलेगी। बॉनेट के नीचे मेरा कलेजा जोर-जोर से धक्-धक् कर रहा है, वही चलाकर ले जायेगा गाड़ी।

अंधेरे के बाद अंधेरा। बहुत दूर आने के बाद मेरी गर्दन पर से धातु का स्पर्श हट गया। जिन्होंने मुझ पर यह कृपा की थी, उनका चेहरा देखने की जरूरत नहीं थी। सिर्फ खुद से ही मैंने प्रश्न किया, रमन, क्या तुम पहुंच गये हो ?

मेरे सामने से एक-के-बाद-एक दृश्य बदलते जा रहे हैं। खूब घना अंधेरा होने के कारण ही इन दृश्यों को अलग-अलग पहचान पाना संभव नहीं है।

■ ■ ■

खून का रंग लाल

मिहिर आचार्य

o o o o

बड़े बाबू के सामने आसामी को पेश किया गया।

आसामी को देखकर दंग रह गये बड़े बाबू। अपनी जिन्दगी में आज से पहले ऐसा विचित्र दृश्य उन्होंने कभी नहीं देखा था।

दुबला-पतला शरीर, पुरानी मैल से चीकट धोती, उलझे-बिखरे बाल, धूप से तपकर ताम्बई चेहरा और झुकी-झुकी आंखें। उम्र भी शायद चौदह या पन्द्रह के करीब होगी।

क्या यही लड़का पॉलीटिकल केस का एक नम्बरी आसामी है? क्या इसी को रिवाल्वर सहित गिरफ्तार किया गया है? वरना क्या आज भारत के एक महान ज्योतिषी का असमय काम तमाम हो जाता?

तो क्या संत्रास युग सचमुच लौट आया है? बड़े बाबू ने सोचा।

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'तो क्या मेरा नाम जाने बिना ही मुझे पकड़ा गया है?' किशोर का

जवाब था ।

'हुम !' बड़े बाबू ने गभीर स्वर मे आवाज निकाली । 'रिवाल्वर तुम्हारे पास कहा से आयी ? खिलौनेवाली नही, बिल्कुल सच्ची, शक्तिशाली आग्नेयास्त्र ?'

'आ ही तो गई । यह तो आप भी देख ही रहे हैं ।'

'इस उम्र मे तुम्हारे हाथ मे किताब-कॉपी शोभा देती है, रिवाल्वर नही ।'

'आपको पता है, मेरा स्कूल से नाम काट दिया गया है !'

'क्यों ?'

'और क्यो, आपकी सरकार चौदह साल के लडके की पढाई निःशुल्क नहीं कर सकती इसलिये ।'

बड़े बाबू ने कहा, 'ओह तो, पढाई-लिखाई नहीं कर पाये इसीलिये यह आवारा-गर्दी अपनाई है ?'

किशोर ने कहा, 'क्या करता, आप ही बताइये ! तीन दिन से घर मे खाने को नहीं है । मेरी छोटी बहन नीलू अभी उस दिन मर गई । मां रोई, पिताजी रोये । मैं खुद अपने हाथों से उसे जगल मे गाड़ आया हू ।'

बड़े बाबू ने कहा, 'दारिद्रय एक जातीय समस्या है । यह एक-दो दिन मे तो खत्म हो नही जायेगी ।'

किशोर ने कहा, 'तब तक मेरी बहन मरती रहेगी । यही न ? इस जातीय समस्या को समझाने के लिये ? क्या आप मेरी बहन को वापस लौटा सकते है ? नही न ?'

'तो क्या, इसीलिये रिवाल्वर उठा लोगे ? इस अस्त्र से तुम दरिद्रता के विरुद्ध लड़ोगे ? तुम्हे पता है, हमारे हाथ मे कितनी ताकत है ?'

'नहीं । दरिद्रता के विरुद्ध नहीं । आपलोगो की इस शक्ति, इसी ताकत के विरुद्ध मैं लडना चाहता हूं ।'

बड़े बाबू ने कहा, 'तुम जो कुछ कह रहे हो वह तुम्हारे मन की बात है, यह मानने को तैयार नही मैं । ये सब बातें किसी की सिखायी हुई हैं ।'

किशोर ने कहा, 'जन्म लेने के बाद ही तो मनुष्य सीखता है, बड़े बाबू । क्या मेरी उम्र मे आपकी कोई बहन भूख से मरी है ?'

'मैं अच्छी तरह समझता हूं कि तुम्हारे पीछे किसी दल का

षड़यंत्र से तुम्हारे जीवन को तहस-नहस कर देना चाहता है। मैं तुम्हारे बाप की उम्र का हूं। मैं तुम्हें बचाऊंगा।'

'माफ कीजियेगा, अपने पिता को मैं अच्छी तरह पहचानता हूं, उनकी पीड़ा को भी मैं खूब समझता हूं। आप किस तरह मेरे पिता को समझ सकते हैं? गरीबों के पिता की जात ही दूसरी होती है।'

'यह गरीब और अमीर की बात नहीं है। सभी पिता एक समान होते हैं।'

'नहीं। यह आपकी धोखा देनेवाली बात है। आप पिता हुए बिना भी अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकते हैं जैसे कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है।'

बड़े बाबू ने पूछा, 'तुमने मीटिंग में मंच की ओर रिवाल्वर तानी थी—'

किशोर ने बीच में ही टोककर कहा, 'हां, मुझे थोड़ी देर हो गई जिससे मैं ट्रिगर नहीं दबा सका।'

'जानते हो, तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारी बातों का मतलब क्या है?'

'मैं एक भालू का शिकार करना चाहता था।'

'भालू?'

'एक ही बात है। हम दोनों का जीवित रहना नामुमकिन है। एक को जाना ही पड़ेगा।'

'पता है, यह एक भयानक राजनैतिक अपराध है? इस अपराध की सजा फांसी तक भी हो सकती है।'

'जिन्दगी एक ही है, बड़े बाबू।'

'तुमको अपने प्राणों का भी मोह नहीं? खुद से प्यार नहीं तुम्हें?'

'है। खुद से प्यार करता हूं इसीलिये तो राह के रोडे साफ करना चाहता हूं।'

बड़े बाबू ने कहा, 'बाहर तुम्हारे माता-पिता आये हुए हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं।'

किशोर ने कहा, 'उनसे मिलकर मुझे क्या लाभ होगा?'

'तुम अपने माता-पिता को प्यार नहीं करते?'

'देखिये, मैं यहां कोई पारिवारिक नाटक के अभिनय के लिये नहीं आया हूं। अगर आपको मुझसे और कुछ नहीं पूछना है तो मुझे लॉक-अप में जाने

'तो तुम कुछ भी नहीं बताओगे ?' अब बड़े बाबू ने अन्य रूप धारण किया। 'रामसिंह !'

'जी, हुज़ूर।' रामसिंह ने सलाम किया।

'इसको ले जाओ। जब तक यह कुछ बताने को राजी न हो''''।'

'जी।'

किशोर को पकड़कर रामसिंह अंधेरी कोठरी में ले आया।

'बोल छोकरे, सच बात बोल।'

किशोर चुप।

हठात् तल-पेट पर एक घूसा पड़ा जोर से। किशोर उछलकर दीवार से जा टकराया। सिर इतनी जोर से टकराया मानो फट गया हो।

रामसिंह ने उसको बिल्ली के बच्चे की भांति फिर से उठा लिया और चुमकारते हुए बोला, 'बोलो भाई, सच-सच बताओ। हाय राम !'

किशोर के होठों की कोर से खून बह चला था। दो दांत भी टूटकर गिर गये थे। पसीने से वह नहा उठा था तथा कंपकंपी से उसका समूचा शरीर हिल रहा था।

'तो कुछ भी नहीं बोलोगे ?'

बड़े बाबू ने आवाज दी, 'रामसिंह, आसामी को ले आओ।'

रामसिंह किशोर के बेहोश शरीर को घसीटकर ले आया।

बड़े बाबू ने कहा, 'यह देखो, तुम्हारे माता-पिता बैठे हैं। तुमसे कुछ कहना चाहते हैं।'

'मां।'

'बेटा ! कैसी हालत कर दी है इन्होंने तुम्हारी ?'

'मां, मुझे पानी''''।'

'रामसिंह, एक लोटा पानी ले आओ।'

पानी लाकर रामसिंह उसे देने लगा।

वड़े वावू ने हांक लगायी, 'ठहरो ! क्यों छोकरे, अव तो सच बात वताओगे न ?'

किशोर ने धुंधली दृष्टि से उनकी ओर देखकर कहा, 'पानी ।'

'हां-हां, पानी मिलेगा, पर उससे पहले तुम्हें सब वताना होगा'

किशोर वड़वड़ाता-सा बोला, 'हां वताऊंगा, वताऊंगा ।'

'रामसिंह, पानी दो ।'

किशोर पानी पीते-पीते उल्टी करने लगा ।

'हाय राम !' रामसिंह के मुंह से निकल गया ।

'वड़े वावू, इतना खून कैसे ? लड़के का हृदय डूवता जा रहा है ।' मां आर्तनाद कर उठी ।

वड़े वावू ने भी फुर्ती दिखाई, 'कहां, देखूं ?'

कलेजे के नीचे एक वहुत वड़ा घाव हो गया था । विल्कुल ताजा घाव था और कच्ची चमड़ी के कट जाने के कारण घाव वनकर वहां से खून निकल रहा था ।

वड़े वावू ने व्यंग्य से कहा, 'यह नाजुक तथा दुवला-पतला शरीर लेकर ही लड़ने चला था ! रामसिंह की दो लात तक तो सह नहीं सका । रामसिंह, डॉक्टर को बुलाओ ।'

किशोर की चेतना हॉस्पिटल की वेड पर लौटी ।

शाम के समय वड़े वावू आये, ''अव कैसा जी है ?'

किशोर ने कहा, 'ठीक है ।'

'जल्दी ही ठीक होना पड़ेगा तुम्हें । तुम्हारे वयान पर ही एक वहुत वड़ा केस निर्भर करता है । फिर हम लोगों को भी तो अनुसन्धान करना पड़ेगा । उहुं, हिलो-डुलो नहीं । डॉक्टर ने कहा है, अगर वैंडेज खुल गई तो फिर तुम्हें किसी तरह से नहीं वचाया जा सकेगा । तुम्हारे शरीर में खून नहीं है ।'

□

दो दिन वाद ।

वड़े वावू वहुत ही आत्मीय वनकर उसकी वेड के पास चेयर खींचकर वैठ गये ।

गोद में डायरी का पेज खुला हुआ था और उंगलियों में पेंसिल दबी हुई थी।

'अब तुम शुरू हो जाओ।' बड़े बाबू ने आवाज में अभिभावक का-सा लाड भरते हुए कहा।

किशोर आखें मूदे लेटा हुआ था। उसके होठ काप रहे थे और सीना सास से हिलता-सा दिखता था। उसके नासिका-रन्ध्रों में मानो किसी फूल की खुशबू तैरकर आ रही थी। पता नहीं, रजनीगंधा की या बेला की। सुगंधमय वातावरण की लहरों पर वह मानो कमल-सा तैर रहा था। किशोर के होंठों पर हंसी फैल गई।

बड़े बाबू दोनों पैर नचा रहे थे। उसके बाद जरा थामे।

'बहुत देर आराम कर चुके।' बड़े बाबू ने उसके बालों में हाथ फिराया। 'हां तो, अब अच्छे बच्चे की तरह शुरू कर दो।'

अचानक किशोर ने प्रश्न किया, 'अच्छा बड़े बाबू, आदमी के मर जाने के बाद क्या होता है ?'

बड़े बाबू हसे, 'मृत्यु तो नश्वर देह की होती है, आत्मा थोड़े ही मरती है।'

'कल रात मैंने एक मजेदार स्वप्न देखा है।'

'स्वप्न ?'

'हां, मैं मर गया हूं। फिर भी मुझे होश है। पता है, मैंने क्या देखा ? देखा कि कितने ही सूअर मेरे चारों तरफ घुर्र-घुर्र कर रहे हैं।'

'सूअर !' बड़े बाबू बेमन-से हो-हो कर हस पड़े। 'अच्छा, अब काम की बातें की जायें। हां तो, अपने दल की खबर सुनाओ। कौन-कौन हैं उसमें ? उनका अस्यागार कहां है ?......'

'बड़े बाबू, चमगादड़ पशु है या पक्षी ?'

'एँ !'

'आप नहीं बता सके न ?' किशोर हो-हो हंसने लगा।

अब बड़े बाबू गंभीर हुए। 'शायद तुम मेरे साथ ठट्ठा कर रहे हो !'

'बड़े बाबू, आपको पता है, उल्लू दिन की रोशनी की ओर नहीं देख सकता।

आप जानते हैं, ऐसा क्यों होता है ? इसकी एक कहानी है ।'

'मैं कहानी नहीं सुनना चाहता । मैं जो कुछ जानना चाहता हूं वह तुम बताओगे कि नहीं ?'

'एक बार की बात है, मेरी बहन है ना, वह मेरे पांव में गुदगुदी कर रही थी और मुझे बहुत जोर की हंसी आ रही थी । नीलू ऐसी ही शरीर है न !'

'चालाकी अपने पास ही रखो । तुम सोचते हो कि बातों में मुझे बहला लोगे ? कुछ बताओगे नहीं ? तो ठीक है । तुम भी सुन लो । हमलोग सच उगलवाना जानते हैं । डॉक्टर साहब के पास एक ऐसा इन्जेक्शन है कि तुम्हें बेहोश करके तुम्हारे मुंह से सारी सच बात उगलवा लेंगे । मैंने सोचा था कि उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी । अब तुम तैयार रहना । कल ही डॉक्टर से तुम्हारे इन्जेक्शन लगवाने का इन्तजाम करता हूं ।'

बड़े बाबू गुस्से में भरकर वहां से निकल गये ।

किशोर को सारी रात नींद नहीं आयी । वह बिस्तर पर पड़ा छटपटाता रहा, क्योंकि इन्जेक्शनवाली बात ने उसे बहुत ही चिन्तित कर दिया था । अगर सचमुच ही बेहोशी की हालत में उसने सब स्वीकार कर लिया........तो ? जब तक होश में है तब तक तो डरने की कोई बात नहीं है । लेकिन बेहोशी में वह क्या बक जायेगा, यह तो उसके बस की बात है नहीं ।

खिड़की से बाहर हल्दिया चांद दीख रहा था ।

अस्पताल निस्तब्ध था । रात की ड्यूटी पर तैनात नर्स बिल्ली की तरह कुर्सी पर बैठी ऊंघ रही थी । उसको एक बार मां की याद आयी । मां बहुत दुःखी है । 'मां, मैया, मां !' उसने अस्पष्ट आवाज में मां को पुकारा ।

□

दूसरे दिन सुबह डॉक्टर को लेकर बड़े बाबू उसके बेड की ओर बढ़े ।

लेकिन पास पहुंचकर जो विभीषिका उन्होंने देखी उसके सामने वे स्तब्ध, स्थिर, मूर्तिवत खड़े-के-खडे रह गये । एक चौदह साल के लड़के में ऐसी लापरवाह हिम्मत आई तो कहां से ?

बेड पर बिछी चादर खून से लथपथ हो लाल हो गई थी । बेड पर से रक्त की

धारा बह-बहकर नीचे गिरी थी, और ढेर-सारे खून के बीचों-बीच एक बलि के बकरे की तरह पड़ा था किशोर। दोनों आंखें खुली थीं। चेहरे पर ज्योतिर्मय मुस्कुराहट थी।

डॉक्टर ने कहा, 'लड़का आपको गच्चा दे गया। उसने अपने हाथों कच्ची बैंडेज खोल डाली। रात भर में उसने अपना सारा खून निचोड़ डाला है।'

बड़े बाबू खड़े-खड़े पसीना-पसीना हो रहे थे।

■ ■ ■

उस्ताद

सुनील गंगोपाध्याय

० ० ० ० ०

'ऐ डाबू, बुड्ढे को बुलाकर ला।'

'बुलाता हूं, उस्ताद।'

'भागकर जा और दौड़कर आ। कुत्ते की चाल चलना, बिल्ली की चाल नहीं। समझा?'

'समझ गया, उस्ताद! चाय-वाय चढ़ा लूं जरा।'

'जाते समय मालूम करना कि नौ पच्चीस की रानाघाट लोकल ट्रेन लेट है कि नहीं।'

'स्टेशन जाऊं?'

'हां, स्टेशन जा। और बुड्ढे से कहना, तुरन्त आये।'

डाबू चाय की दुकान में से उठकर बाहर निकल गया। उसके चलने का ढंग भी बहुत ही विचित्र था। देखने में यों लगता मानो उसके शरीर के किसी हिस्से में कोई तकलीफ हो। सामने देखते हुए तो जैसे चलना जानता ही नहीं

वह। अचानक ही वह कभी बायें, कभी दाहिने, तो कभी एकदम पीछे की ओर गर्दन घुमा लेता। उसके दोनों हाथ कभी भी एक-साथ बाहर नहीं रहते थे। एक हाथ पेन्ट की जेब में अवश्य ही रहता। चलते-चलते वह अचानक सड़क पार कर दूसरे फुटपाथ पर आ जाता। कोई लड़की दिखाई पड़ जाती तो उसकी आंखें बस वहीं जम जातीं, और तब वह कुछ देर वहीं ठिठक जाता। लड़की नजर आते ही वह होंठ बिचकाने तथा आंखें मटकाने लगता। लड़की जितनी खूबसूरत होती, उसकी यह क्रिया उतनी ही तीव्र गति पकड़ लेती।

'ऐ परी, इधर आ।'

'क्या बात है, उस्ताद?'

'देख तो इस लाइटर में क्या खराबी है? जलता नहीं है स्साला। कल सुबह ही तो पेट्रोल भरा है।'

'शायद पत्थर खतम हो गया है।'

'धत् तेरे की!'

'यह क्या, उस्ताद! लाइटर ही फेंक दिया! इतनी कीमती चीज फेंक दी!'

'चुप कर। और बहुत आयेगी।'

परी चुप हो गया। उस्ताद यानी पल्टू की इस तरह की आदत से वह अच्छी तरह परिचित है। किसी-किसी दिन पल्टू को यों ही चीजें बरबाद करने की मन में आ जाती है। अब इस कीमती लाइटर की बात को ही लें, अगर वह उठाने जाय तो जोर की डांट खायेगा। थोड़ी ही देर पहले, सिगरेट खरीदते समय पल्टू ने दस का नोट भुनाया था। भुनाते वक्त पल्टू के हाथ से एक का नोट जमीन पर गिर गया था, पर पल्टू ने वह नोट वापस नहीं उठाया। पास ही एक भिखारी का लड़का एक अन्य व्यक्ति के सामने एक पैसे के लिये रिरिया रहा था। पल्टू ने उसको पुकार, रुपया दिखाकर कहा, 'ऐ, यह रुपया उठा ले। यह रहा। ले ले।'

आज पल्टू शायद और भी बहुत-कुछ फेंक देगा या बरबाद करेगा।

पल्टू, परी, डाबू, बुड्ढा इन सभी का एक-एक अच्छा नाम भी है। लेकिन बहुत दिनों से वे नाम व्यवहृत नहीं हुए। किसी ने उस नाम से उन्हें नहीं पुकारा।

वे लोग एक चाय-दुकान की एक केबिन में बैठे थे। पर्दा गिरा हुआ नहीं है फिर भी उनके रहते उस केबिन में कोई नहीं घुसेगा। यहां तक कि आवाज दिये बिना बेयरे तक की वहां झांकने की हिम्मत नहीं होती।

पल्टू ने अपने कप में बची हुई चाय को एश-ट्रे में डाल दिया। उसके बाद जमीन पर रखे थैले में बहुत ही सावधानी-पूर्वक हाथ डालकर शराब की एक बोतल निकाली। अपने कप में लबालब शराब भरकर परी से बोला, 'ला, तेरा कप भी खाली करके दे। डाबू के सामने इसलिये नहीं निकाला कि वह जरा-सी लेते ही डाउन हो जाता है। क्या चीज है, देखी तूने!'

परी ने शराब की बोतल पर चिपके लेबल को परखते हुए कहा, 'अरे वाह, बॉस, यह तो—'

पल्टू ने कप को होंठों के पास ले जाकर उस रंगीन पदार्थ को एक ही घूंट में खतम कर दिया। खूबी यह कि न तो उसके चेहरे की एक भी रेखा कांपी और न ही उसे हिचकी आई। परी प्रशंसा भरी नजरों से उसकी ओर देखे जा रहा था। फिर बोला, 'यह हुई न कोई काम की बात!'

इस तीखे अर्क को पान करने की प्रतिक्रिया सिर्फ उसकी आंखों में दिखाई पड़ी। कप खाली होने के साथ ही उसकी आंखों के डोरे लाल हो उठे।

कप को दुबारा भरते हुए पल्टू बोला, 'ऐसे दिनों में मुझे सबसे अधिक कौन याद आता है, जानते हो? पगला। पगले के चले जाने से मानो मेरा दाहिना हाथ ही चला गया हो।'

परी ने कहा, 'पगला भी साला पॉलीटिक्स से भिड़ने क्यों गया था भला। मैंने तो उससे उसी समय कहा था कि ये सब बेकार के झमेले हैं। हर दिन कोई नई बात कहते हैं ये राजनीतिज्ञ लोग।'

पल्टू गम्भीर हो जाता है। फिर अपने आप बड़बड़ाता है, 'पगले की पत्नी भी झंझटिया थी।'

डाबू ने आकर कहा, 'बुड्ढा नहीं आ सकेगा। उसने कहा है कि उसे बुखार है।'

पल्टू ने क्रुद्ध होकर कहा, 'उसने ही कहा या तूने भी देखा?'

'बुड्ढा लेटा हुआ था यह तो मैंने भी देखा। साबी ने भी मुझसे कहा—'

पल्टू उठ खड़ा हुआ और बोला, 'चल, देख आते हैं। अच्छा, ट्रेन लेट है क्या ?'

'बीस मिनिट।'

सड़क पर वे तीनों पास-पास कभी नही चलते। एक-दूसरे से दूरी रखते हुए चला करते। इस शहर की सड़कों, रास्तों, दुकानों, मकानों एवं जिन्दगी के जो एक प्रकार के अपने नियम हैं, ये लोग उन सभी नियमों से बाहर हैं। ये लोग एक-दूसरे से इतनी दूरी पर रहते हुए भी एक-दूसरे के लिए पूरी तरह सतर्क रहते हैं।

विपरीत दिशा से चार-पाच लडकों का एक और दल चला आ रहा है। यहा के रास्ते भी बटे हुए हैं। इस तरह एक ही समय एक ही रास्ते से एक साथ दो दलों का गुजरना, नियम के विरुद्ध है। जगल मे भी तो यही नियम चलता है।

फिर भी पल्टू के साथ रहने पर उसके दल को कोई तङ्ग नहीं करता। पर इस समय खुद पल्टू ने ही उन्हें निर्विरोध चले जाने का अधिकार दे दिया। पल्टू अपने दल के साथ दीवार से लगकर खड़ा हो गया। हाथ मे स्थित सिगरेट आधी भी नही खत्म हुई थी कि उसे फेंककर पल्टू ने बहुत ही मनोयोग सहित दूसरी सिगरेट सुलगा ली।

रेलवे लाइन को पार कर एक बस्ती आती है। बस्ती के एक कोने में बुड्ढे का घर है। बुड्ढे की उम्र करीब तीस बरस है। चादर मुह पर लपेटे बुड्ढा सोया पडा है। खटिया के पास एक दुबले चेहरेवाली लडकी खड़ी है।

पल्टू ने कमरे में घुसते ही एक झटके मे बुड्ढे के बदन पर से चादर खीचकर दूर फेंक दी और कहा, 'ऐ साला!'

'मा कसम, आज मुझे बुखार है। आज मैं नही जाऊंगा!'

'स्साले, भालू के बच्चे! तुम्हारे बुखार की ऐसी-तैसी।'

परी हंस रहा था। पल्टू की चीजें बरबाद करने की आदत एव बुड्ढे को बुखार का बहाना करने की आदत, दोनों की आदतें एक-सी थी। हर बार ऐसा ही होता है।

पल्टू शराब की बोतल निकालकर बुड्ढे के मुंह से लगाते . बोला, 'ले,

साले। तेरा बुखार तो क्या बुखार का बाप भाग ...
ले-पतले चेहरेवाली लड़की ने तीखी आवाज में पल्टू से कहा, 'मैं पूछती यह सब क्या हो रहा है? वह आज एकदम नहीं जायेगा! मैं कहती हूं, ह नहीं जायेगा।'

ल्टू हंस पड़ा। इस तरह की भयानक हंसी हंसने का उसने अभ्यास किया है ा जन्मजात आदत है, पता नहीं। पर उस हंसी को देखनेवालों के बदन सिहर उठते हैं।

झट से उसने लड़की का एक हाथ कसकर पकड़ लिया और हाथ को मरोड़ते हुए बोला, 'बोल, अब बोल, तोड़ दूं?'

लड़की दर्द के मारे चीख पड़ी। बोली, 'आह, दर्द होता है। हाय, टूट जायेगा मेरा हाथ।'

पल्टू हंसते-हंसते और भी जोर से उसका हाथ मरोड़ने लगा। इस बीच बुड्ढा भी हड़बड़ाकर उठ बैठा। बुड्ढे ने कुछ अनुनय तथा कुछ भर्त्सना का सम्मिश्रण कर कहा, 'ओह, यह क्या करते हो, उस्ताद? औरत जात के शरीर पर हाथ क्यों डालते हो?'

पल्टू ने उसकी बात अनसुनी कर लड़की का हाथ छोड़ दिया और तड़ाक् से एक चांटा लड़की के गाल पर जड़ दिया। फिर बोला, 'आगे से कभी मेरे सामने जवाब देने की हिम्मत मत करना। समझी?'

और फिर बुड्ढे की ओर मुड़कर बोला, 'चल, औजार ले लिया है न? जल्दी चल।'

लड़की ने दर्द से बेहाल हाथ को सहलाते-सहलाते कहा, 'मरो। आज ही तुम सब-के-सब मर जाओ। तुम सब मरोगे उस दिन मैं सत्यनारायण भगवान की कथा कराऊंगी, शीतला माता पर जल चढ़ाऊंगी, और तुम लोगों की चिता पर बैठकर कीर्तन करूंगी।'

पल्टू दस का एक नोट उसकी ओर उछालकर जमीन पर फेंकता हुआ बोला, 'मैं चला, सावी। तेरे बुड्ढे को सही-सलामत तेरे पास पहुंचा दूंगा। मैं मरू या जीऊं पर तेरा बुड्ढा तुझे सही-सलामत वापस मिल जायेगा। तब तू मां... लाकर पकाना, रांधना। समझी?'

उसके बाद बस्ती के पीछे की ओर खड़ी की गई जीप में सवार होकर पन्द्रह मिनिट तक उन लोगों ने निरर्थक चक्कर लगाये। कोई उद्देश्य नहीं, सिर्फ गाड़ी में बैठकर घूमना। गाड़ी में बैठे-बैठे ही शराब की बोतल शेष हो गई। पल्टू ने उसे सड़क पर फेंक दिया। खाली बोतल का शीशा झनझनाकर चूर-चूर हो गया। आखिर जीप रेलवे स्टेशन के सामने आकर रुकी। वे तीनों उतर गये। परी जीप स्टार्ट कर वहां से चला गया।

स्टेशन पर भी वे तीनों पास-पास खड़े नहीं हुए, एक-दूसरे से विशेष दूरी रखकर खड़े थे। ट्रेन के आते ही तीनों व्यक्ति तीन डब्बों में चढ गये, और इस तरह चढे मानो आपस में एक-दूसरे को पहचानते ही न हों। करीब पन्द्रह मिनट चलने के बाद दो लम्बी तथा एक छोटी व्हिसिल देते-देते ट्रेन की गति मंथर हो गई और आखिर एक अंधेरे जंगल में ठहर गई ट्रेन। क्यों ठहर गई, इसका किसी को भी पता नहीं।

झट-पट वे तीनों नीचे उतर गये। दो-एक पल उनमें पता नहीं क्या विचार-विनिमय हुआ और उसके बाद तीनों एक ही डब्बे में सवार हो गये। ट्रेन फिर से धीरे-धीरे चलने लगी।

पल्टू के हाथ में रिवाल्वर था तथा डाबू और बुड्ढे के हाथों में छुरे थे। डब्बे में उन्नीस या बीस से अधिक यात्री नहीं थे। पल्टू ने यात्रियों की ओर मुखातिब होकर भयानक रूप से दांत पीसते हुए कहा, 'कोई भी चिल्लाया तो गोली मार दूंगा। सालों, निकालो जिस-जिसके पास जो माल है!'

डब्बे में बैठे यात्री निस्तब्ध-निस्पन्द-से बैठे थे। सिर्फ एक प्रौढ़ उम्र की महिला डर के मारे चिल्ला पड़ी थी, क्योंकि डब्बे में वही एकमात्र महिला थी। पर किसी ने भी कुछ निकालकर नहीं दिया। बुड्ढा, सचमुच के एक वृद्ध के पास जाकर बोला, 'घड़ी खोल, स्साले। इस तरह मुंह बाए क्या देख रहा है?'

पता नहीं घड़ी खोलने का हुक्म सुनकर या अपने लिये साला शब्द सुनकर वृद्ध सचमुच ही हक्का-बक्का रह गया था।

बिल्कुल अकारण, सिर्फ अपने शैतान दिल की खुशी के लिये, पल्टू ने अपने समीप बैठे आदमी के सीने पर रिवाल्वर की नाल रखते हुए अश्लील एवं वीभत्स गाली-गलौज करते-करते इतनी जोर से उसके मुंह पर मुक्का मारा कि उसी समय होंठ कटकर बेचारे के होंठों से तथा मुंह से खून बहने लगा।

अब, टपा-टप रुपये, पैसे, घड़ी आदि चीजें निकलने लगीं चारों ओर से। डाबू उन सभी चीजों को थैले में भरता जा रहा था और बुड्ढा जा-जाकर लोगों की तलाशी ले रहा था। एक आदमी की अंटी में सात हजार रुपये मिले। इतने रुपये लेकर वह रात की ट्रेन से सफर क्यों कर रहा है, इसका जवाब कौन देता ?

प्रौढ़ महिला अपने गले का हार देने को किसी तरह भी राजी नहीं हुई। गहनों से औरतों को बहुत प्यार होता है। पल्टू खुद महिला के समीप पहुंचा और हार को अपनी मुट्ठी में कसकर जोर का झटका दे तोड़ लेना चाहा, पर हार इतनी सहजता से टूटनेवाला नहीं था। पल्टू स्वभावतः लड़कियों से बहुत निष्ठुरता से पेश आता है। उसने उक्त महिला की छाती पर एक हाथ रख पीछे की ओर ढकेला तथा दूसरे हाथ से हार को पकड़कर कई झटके दिये, तब कहीं हार टूटा। उस महिला के तो मानो प्राण ही निकल गये हों इस तरह की एक चीख मारी उसने। पता नहीं, शारीरिक पीड़ा महसूस करके या हार खोने के दुःख में।

कुल मिलाकर, चीजें कम इकट्ठी नहीं हुई थीं फिर भी उनको ट्रेन से उतरने की कोई जल्दी नहीं थी। दो व्यक्तियों की छाती पर छुरी रखे डाबू और बुड्ढा उनसे पेन्ट खुलवा रहे थे। यह सब सिर्फ खेल नहीं था, टेरिलीन की पेन्ट थीं। कम-से-कम सत्तर-अस्सी रुपये की तो होगी ही। बेचारे एक ने तो पेन्ट-बुशर्ट दोनों ही खोल दिये। दूसरे व्यक्ति को ज्यादा ही शर्म आ रही थी, वह किसी तरह भी पेन्ट खोलने को तैयार नहीं था। बुड्ढे का पारा गर्म हो गया, उसने उस आदमी के पेट में छुरा भोंक दिया। यह उस व्यक्ति की शर्म की कीमत थी।

रक्त-दर्शन के साथ-साथ ही दृश्य पलट गया। इतनी देर सब चुपचाप बैठे थे। डर के मारे सभी यात्री चीखने-चिल्लाने लगे। उन्होंने भी फुर्ती से अपनी सभी चीजें समेट लीं। ट्रेन उस वक्त तक बहुत धीमी चाल से ही चल रही थी, अतः वे बड़ी फुर्ती से ट्रेन से कूद गये। अब तक डब्बे में चीख-पुकार बहुत जोरों से मच गई थी।

इतना सब होने के बाद बम फेंकने की जिम्मेदारी बुड्ढे की थी। झोले में से निकाल-निकालकर एक-के-बाद-एक तीन बम फोड़े भागने से पहले। ट्रेन अब एकदम रुक गई। कुछ सिपाही बहुत ही मुस्तैदी के साथ भाग-दौड़ करने

लगे; जिस डब्बे मे गोल-माल हुआ :है उसे बाद देकर तथा पल्टू लोग जिधर भागे हैं उसकी विपरीत दिशा मे ही वे अधिक भाग-दौड़ कर रहे थे।

परी जीप लिये तैयार खड़ा था। उन लोगों के जीप मे सवार होते ही उसने पूछा, 'माल-वाल कैसा हाथ लगा ? बढ़िया ?'

पल्टू ने कहा, 'बुरा तो नही। पर तू जल्दी चला।'

मानो रसगुल्ले का रस हो इस तरह पल्टू ने बुड्ढे से कहा, 'बुड्ढे, तेरे हाथ मे खून लगा है, कही मेरे शरीर से मत छुआ देना।'

जीप दौडी जा रही थी। अब तक तो प्रोग्राम बहुत ही सफल रहा। इससे पहले के दो प्रोग्राम भी इसी तरह सफल रहे थे। कही भी किसी प्रकार की मुसीबत मे नही फसे। लेकिन इस बार ऐसा नही हुआ। थोड़ी देर बाद ही उन्होंने देखा कि दो जीप उन्ही का पीछा करती बढी चली आ रही हैं। पर ऐसा होने की कोई संभावना तो नही थी।

परी का दिमाग ठंडा था, उनकी गाड़ी बहुत आगे निकल आई थी अतः खतरा बहुत ज्यादा तो नही था। थोड़ी देर तेज रफ्तार से गाडी चलाने के बाद परी ने कहा, 'उस्ताद, सामने चेक-पोस्ट है, गाड़ी स्लो करनी पड़ेगी।'

पल्टू ने गर्दन घुमाकर पीछे की ओर देखने की कोशिश की और बोला, 'उस जीप मे ओ. सी. है क्या ? अगर ओ. सी. है तो—'

इतनी देर से डाबू भी पीछे की ओर ही देख रहा था। उसकी तेज नजरें वाइनाकुलर की तरह दूरी को पास ले आती थी। उसने चौंककर कहा, 'पुलिस नही, मिलिट्री है।'

मिलिट्री के साथ रेस लड़ने से कोई फायदा नहीं। इसके अलावा, यह भी तो संभव है कि, मिलिट्री उनका पीछा नहीं कर रही हो। उनके साइड देने पर शायद वे आगे चले जायं। जरा आगे, दाहिनी ओर एक सकरा रास्ता है, अगर वे उधर मुड़ना चाहेंगे तो भी उन्हे गाड़ी की रफ्तार तो कम करनी ही पड़ेगी।

पल्टू ने कहा, 'साइड कर। परी, साइड कर।'

लेकिन गाड़ी की गति धीमी होते ही उधर से गोलियों की बौछार होने लगी इन पर। और कोई उपाय भी तो नही था। सिर मुंडाते ही ओले पड़नेवाली बात

हो गई। इस अंचल में शायद हाल में ही कफ्यूं लगा है। पॉलीटिक्स-बाज लड़कों ने इधर कोई कांड किया है और उनकी गलती का दंड पल्टू आदि को भुगतना पड़ रहा है।

अचानक जीप में ब्रेक लगा, परी गाड़ी से कूदकर अंधेरे की ओर भाग गया। वह इतनी शीघ्रता से चम्पत हुआ कि एक पल पहले तक उसके साथी उसके मतलब को नहीं समझ पाये। डाबू भी कूद गया था। पल्टू के हाथ में रिवाल्वर था पर सिर्फ एक रिवाल्वर से मिलिट्री का सामना नहीं किया जा सकता। भागने की सुविधा प्राप्त करने हेतु बुड्ढे एवं पल्टू ने सड़क पर बम फेंकने शुरू कर दिये।

वे बहुत दूर तक दौड़ चुके थे लेकिन इस बीच फौजी भी जीप से उतरकर लगातार उनका पीछा कर रहे थे। इसी भाग-दौड़ में बुड्ढे की पीठ में गोली लगने से वह वहीं गिर गया। पल्टू एक पीपल के पेड़ के मोटे तने के पीछे छिपा खड़ा था। अभी भागा जा सकता है लेकिन एक फौजी बुड्ढे की देह की ओर आ रहा था। बदला लिये बिना भाग जाना पल्टू के खून में ही नहीं है। शायद बुड्ढा अभी भी जीवित हो।

उस व्यक्ति ने बूट से बुड्ढे की देह पर ठोकर मारी, तो पल्टू ने लगातार तीन गोलियां उस पर चलाकर उसके शरीर को छेद डाला। उसके बाद पता नहीं कहां से एक गोली उसके दाहिने बाजू में आकर लगी।

पल्टू और उसके साथियों का दुर्भाग्य ही कहिये कि वे फौजी ऑफिसरों की दो जीपों के सामने पड़ गये थे। ट्रेन से उतरकर कुछ लोगों ने फौजी अफसरों की जीप को रोककर ट्रेन में हुई डकैती के बारे में बताया था।

गोली खाकर पल्टू जमीन पर गिर पड़ा, लेकिन दूसरे ही पल वह उठकर भागने लगा था कि एक मजबूत हाथ ने उसकी गर्दन धर दबायी।

हाथ की पीड़ा के मारे पल्टू मरा जा रहा था। अतः क्रुद्ध हो पागल कुत्ते की तरह घूमकर उसने छुरी मारनी चाही कि उसकी कनपटी पर जन्नाटेदार एक थप्पड़ पड़ा। थप्पड़ पड़ने के बावजूद पल्टू के मुंह से आश्चर्यजनक आवाज में निकल पड़ा, 'साधन दा!'

फौजी अफसर ने पूछा, 'कौन?'

'साधन दा, मैं हूं, पल्टू। मुझे छोड़ दो।'

'कौन हो तुम ?'

हाथ का कसाव गर्दन पर कुछ ढीला पड गया था। उसी मौके का फायदा उठा, पल्टू ने खुद को फौजी अफसर के पंजे से मुक्त कराकर भागना शुरू कर दिया। जाने से पहले पल्टू ने अपने विरोधी की थुथनी पर सिर से जोरदार प्रहार किया था और कुछ अश्लील गालियां भी दे गया था। अब उसे कोई भी नहीं पकड़ सकता।

पीछे से चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ी, 'हॉल्ट ! गोली मार दूंगा।'

लेकिन अब भला पल्टू कहीं रुकनेवाला था ! उसके पैरों में अभी भी ताकत है। बुड्ढे को मारने का बदला ले लिया है उसने। अब उसकी कोई जिम्मेदारी बाकी नहीं रही।

दुबारा दहाड़ सुनाई पड़ी, 'रुक जाओ !' पर पल्टू रुका नहीं। ठीक तभी स्टेनगन की गोलियों से उसका शरीर छलनी हो गया। मरने से पहले वह एक शब्द भी नहीं बोल सका। उसका शरीर धरती पर गिरने से पहले ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये थे।

□

'क्यों रे पल्टू, क्या हाल-चाल हैं तेरे ?'

'साधन दा, मेरी मां मर गई है।'

'ओह, कब ?'

'यही, करीब डेढ महीना हुआ होगा।'

'तभी, तुम्हारा घुटा-घुटा-सा सिर देखकर मैं भी सोच रहा था कि—; पहले तो मैं तुझे पहचान ही नहीं सका। क्या हुआ था उन्हें ?'

'कुछ नहीं। बस यों ही सर्दी-जुकाम लगकर बुखार रहने लगा था।'

'ओह ! पता ही नहीं चला मुझे तो। तेरी मां मुझे कितना चाहती थी !'

'तुमलोग कलकत्ता में तो थे नहीं !'

'नहीं। हमलोग तो अब दिल्ली रहने लगे हैं। हां, तुमलोग कहां रहते हो ? तुम्हारे पिताजी तो अवश्य ही जीवित होंगे ?'

'हां। पिताजी ने खड़दा में एक छोटी दुकान कर रखी है। हम वहीं रहते हैं।'

'चेहरे से तू इतना भोंदू सरीखा क्यों दीख रहा है ? पढ़ाई-वढ़ाई तो करता है न ?'

पल्टू ने शर्म से सिर झुका लिया और बोला, 'मुझसे पढ़ाई नहीं होती। दिमाग ही नहीं है मेरे पास।'

साधन ने हंसते हुए कहा, 'तो गर्दन पर इतना बड़ा सिर बिल्कुल खाली है क्या ? स्कूल फाइनल में कितनी बार फेल हुआ ?'

'दो बार।'

'तो तीसरी बार भी हो जाते। कोशिश तो करते।'

'तुम्हें तो पता ही है साधन दा, मां तो है नहीं, पिताजी मुझे और आगे पढ़ायेंगे नहीं।'

'तो फिर, तू अब क्या करेगा ?'

'कोई नौकरी-वौकरी ढूंढ़नी पड़ेगी। ड्राइविंग सीख रहा हूं, शायद ड्राइवर की नौकरी मिल जाय।'

'इतनी छोटी-सी उम्र में तुझे नौकरी पर कौन रखेगा ? कितनी उम्र होगी तेरी इस वक्त ? सोलह या सत्रह का होगा तू ?'

'उन्नीस का हो गया हूं।'

'उन्नीस का हो गया ? तो फिर ड्राइवरी करके क्या करेगा ? किसी कारखाने में घुस सके तो कोशिश कर।'

'तुम्हारी तो बहुत जगह जान-पहचान है, जरा मेरे लिये भी कोशिश करो न !'

'अच्छी बात है, देखूंगा। आजकल नौकरी का बाजार इतना तंग है कि बस पूछो मत।'

'तो, तुम वापस दिल्ली चले जाओगे ?'

'हां। अभी एक महीने की छुट्टी पर हूं। तुम्हें मालूम है न, मैं आजकल आर्मी में हूं।'

'हां, जानता हूं। तुमलोग अभी भी उसी मनोहरपुकुर वाले मकान में ही रहते हो न ?'

'हा वही। आना कभी। अच्छा तो अब मैं चलूं—'

'ठहरो न। इतने दिनों बाद तो तुम मिले हो।'

'तो चल, चाय पीयें।'

साधन ने पल्टू के कंधे पर हाथ रख चाय की दुकान की ओर कदम बढ़ाये। चलते-चलते बहुत ही अपनत्व भरे शब्दों में बोला, 'तेरी मा मर गई सुनकर मुझे बहुत ही दु ख हुआ। मुझे इतना चाहती थी, इतना स्नेह करती थी कि, क्या बताऊं! यह खबर सुन मेरी मा को भी बहुत ही दु ख होगा।'

□

'मां देखो, साधन दा!'

'कहा? हाय राम, सचमुच, यह साधन ही तो है।'

'बुलाऊं?'

'जा, जा। बुलाकर ला।'

'ओ साधन दा! साधन दा! मुझे नही पहचाना?'

'कौन?'

'मैं पल्टू।'

'अरे...., पल्टू! तू तो पहचाना ही नही जाता अब। कितना बड़ा हो गया है रे!'

'वाह, तुम भी तो बडे हो गये हो। वह देखो, मा वहा खड़ी है।'

'सच! चल, मिल आऊं।'

साधन ने पास पहुंचकर पल्टू की मां के चरण-स्पर्श किये। मां ने भी आशीर्वाद दिया, 'जीते रहो बेटा, सुखी रहो। कितने दिनों बाद तुम्हें देखा है!'

साधन ने कहा, 'हां चाची, सच, बहुत दिन हो गये। पल्टू को देखकर मैं तो चकित रह गया। पहचान ही नही पाया। कितना बड़ा हो गया है यह! कौन-सी क्लास में पढता है रे पल्टू?'

'क्लास सेवेन मे। देशबन्धु विद्यालय मे।'

मां ने पूछा, 'साधन, तुम अभी क्या पढ़ ही रहे हो?'

'इस बार मैंने आई० एस-सी० की परीक्षा दी है।'

'अच्छी बात है बेटा, बहुत ही खुशी की बात है। भगवान करे तुम और अधिक विद्वान बनो, मां-बाप का नाम रौशन करो। यहां अचानक कैसे आये, बेटा ?'

'दोस्तों के साथ मुर्शीदाबाद की सैर करने आया हूं। बहरामपुर स्टेशन के पास ही एक होटल में ठहरे हैं।'

'होटल में ठहरे हो ? क्यों ? तुम यहां आ जाओ न।'

'नहीं चाची, दोस्तों के साथ आया हूं न, इसलिए उन्हीं के साथ रहना ठीक रहेगा। इसके अलावा, हमलोग कल तो जा ही रहे हैं।'

'तेरी मां कैसी है ? कलकत्ता में तुमलोग किस जगह रहते हो ?'

'हमलोगों ने मनोहरपुकुर में एक मकान खरीदा है। आप आइये न किसी दिन। आपको देखकर मां बहुत खुश होंगी। मैं मां से कहूंगा कि आपसे मिला हूं मैं।'

'मैं तो बस जा चुकी, बेटा ! मुझे ले ही कौन जायेगा ? उनका स्वास्थ्य तो ठीक नहीं रहता।'

'क्यों ? क्या पल्टू नहीं ले जा सकेगा ? हां रे पल्टू, तू ट्रेन में बैठकर नहीं जा सकेगा ? ट्रेन से उतरकर एट-बी बस में चढ़ जाना।'

'हां, मैं जा सकता हूं।'

मां ने कहा, 'चलो साधन, थोड़ी देर हमारे घर चलो न। दूर नहीं, बस पास ही है। इतने दिनों बाद तुम्हें देखा है।'

'चाची, दो मिनिट यहीं ठहरो, मैं दोस्तों से कह आऊं जरा।'

मां ने घर का दरवाजा खोलकर भीतर प्रवेश करते हुए साधन से कहा, 'आओ, इस खाट पर बैठो। रहने दो, रहने दो; जूते उतारने की कोई जरूरत नहीं। पहले से ही घर कौन-सा साफ-सुथरा है ! ऐसी हालत है मकान की कि, बाहर का कोई भी आ जाता है तो शर्मिन्दा होना पड़ता है। तुम्हारी बात दूसरी है। तुम तो अपने ही लड़के जैसे हो। जब अपने देश में थे तो तुम्हारी मां और मुझमें कितनी गहरी मित्रता थी। उसके घर में विशेष कुछ भी बनता तो मुझे खिलाये बिना नहीं खाती थी। इसी तरह मैं भी कुछ अच्छी चीज बनाती तो—'

'हां चाची, मुझे सब कुछ याद है।'

'तेरी बहन चन्दना की शादी हो गई क्या ?'

'हां, दीदी की शादी हो गई। दीदी भी आजकल दिल्ली में ही रहती है। जीजाजी, सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट मे एक ऑफिसर हैं।'

'वाह भई, बहुत ही खुशी की बात है। सच मुझे बहुत खुशी हुई यह खबर सुनकर। भगवान करे उसकी गृहस्थी सदा हरी-भरी रहे। और तेरे छोटे भाई के क्या हाल हैं ?

'वह तो दार्जिलिंग में पढता है। चाची, झरना दीदी कहां है आजकल ?'

झरना दीदी को नर्सिंग में भरती करवा दिया है। नर्सिंग की ट्रेनिंग पास कर ले तो कुछ कमाने लायक हो जायेगी। क्या करू, शादी तो कर नहीं सकी उसकी। और फिर करती भी कहा से ? घर में कोई भी तो नही है कमाने-वाला। तुम्हारे चाचा तो हरदम बीमार ही रहते हैं। सुन रहे हो न, खांसी की आवाज ? बस इसी तरह चलता है इनके—कभी खांसी, कभी बुखार।'

'डॉक्टर को नही दिखाया ?'

'अस्पताल में दिखाया था। वे लोग अस्पताल मे भर्ती करवाने को कहते है। लेकिन भर्ती करवाना इतना आसान थोड़े ही है !'

'चाची, आपका चेहरा भी कितना बदल गया है। स्वास्थ्य गिर गया है। पहले आप कितनी सुन्दर लगती थीं, क्या स्वास्थ्य था आपका !'

'नहीं-नहीं, मुझे कुछ नही हुआ। मैं बिल्कुल ठीक हू।'

'तो, अब मुझे आज्ञा दीजिये। दोस्त लोग इन्तजार कर रहे होंगे। पल्टू कहा गया ?'

'बैठो, बस थोड़ी देर और बैठो। इतने दिन बाद तुम्हें देखा है, सच, मुझे बहुत ही खुशी हो रही है। तुम सब तो कुशलपूर्वक हो, सुनकर मेरा खून बढ़ गया है रे खुशी के मारे।'

'ऐ पल्टू, कहा गया था ? यह क्या चाची ? आपने यह सब क्यो मंगवाया है ! बेकार ही इतनी मिठाई-विठाई मंगवायी है आपने। नही, मैं कुछ भी नही खाऊंगा इस वक्त।'

'अरे, कुछ नही है, बस जरा-सी मिठाई मंगवायी है। इतने दिनो बाद तुम्हारा

प्रणाम हासिल हुआ है मुझे, और इस खुशी के अवसर पर मैं तुम्हारा मुंह भी मीठा न कराऊं? जब गांव में थी तब, जब भी तुम्हारे घर जाती तो कितनी-कितनी चीजें खाकर आया करती, मुझे सब याद है।'

'अब उन बातों से—'

'पल्टू, तेरी थुथनी इस तरह कैसे कट गई रे? क्या हुआ?'

साधन दा का प्रश्न सुन पल्टू हक्का-बक्का रह गया। उसने एक बार साधन दा की ओर देखा, फिर अपनी मां की ओर देखने लगा। उसके बाद बहुत ही संकोच-सहित बोला, 'कल गिर पड़ा था।'

पल्टू की मां रो पड़ी। आंखों पर आंचल ढंकती हुई बोली, 'नहीं, गिरा नहीं है। मनुष्य कितना निष्ठुर हो सकता है, यह उसी का प्रमाण है। पास ही के एक मकान में पल्टू खेलने जाया करता है। वे लोग बड़े आदमी हैं। हम उनकी नजरों में कुछ भी नहीं हैं। फिर भी हमारे बच्चे भी तो और बच्चों की तरह आखिर बच्चे ही हैं। औरों की तरह हमें भी अपने बच्चों से उतनी ही ममता है। क्या हमें अपने बच्चों का दुख-दर्द नहीं सताता? उनके घर में वह आंख-मिचौली खेल रहा था। पल्टू के हाथ का धक्का लगकर उनकी एक कीमती फूल-दानी टूट गई। मान लो, इसने तोड़ ही दी, पर आखिर तो यह बच्चा ही है। इसने क्या जान-बूझकर तोड़ी थी? उनके लड़के से भी तो टूट सकती थी। इतनी-सी बात के लिये बच्चे को इस तरह मारना चाहिये था? तुम्हीं देखो, कितनी बुरी तरह मारा है! खून से भीगा कमीज लेकर जब यह घर लौटा तो मैं ही जानती हूं, मेरे दिल पर क्या गुजरी है....ठोंगे बेचकर कितने कष्ट से मैं इसकी पढ़ाई करवा रही हूं, इसी उम्मीद पर कि, बड़ा होकर यह मुझे सहारा देगा।'

□

एक पांच साल का गोल-मटोल बच्चा उछलता-कूदता आता है और आकर कहता है, 'मां, तुमने साधन को पैसे दिये हैं, और मुझे नहीं दिये!'

'छीः छीः पल्टू, साधन नहीं कहते, बेटा। साधन भैया कहो। वह तुमसे बड़ा है न उम्र में!'

'हां-हां, साधन भैया को तुमने पैसे क्यों दिये जबकि, मुझे नहीं दिये!'

लम्बे बरामदे में बिछे कार्पेट पर एक आठ साल का लड़का बाबू बना सजा-संवरा बैठा है। वह बड़े ही मनोयोगपूर्वक खीर खाने में मगन है।

मा ने कहा, 'हां तुम्हें भी दूंगी, जा पहले मुंह-हाथ धोकर आ।'

पल्टू उछलता-कूदता हाथ-मुंह धोने चला गया। मा ने साधन से पूछा, 'क्यों बेटा, थोड़ी-सी और लेगा ? खीर नहीं लेता तो दो लड्डू ही ले ले नारियल के। बड़ा ही राजा बेटा है ! कहना मानता है मेरा।'

तब तक पल्टू भी वहां पहुंच गया था। वह भी साधन की तरह साफ-सुथरा हो आज्ञाकारी बालक की तरह बैठकर बोला, 'साधन भैया को जितने लड्डू दिये हैं उतने मुझे भी दो।'

'तूने सुबह भी खाये थे। अधिक खायेगा तो पेट दुखेगा।'

'कुछ भी हो, आज तो मैं जरूर लूंगा।'

'तो ले, जल्दी से खा ले। फिर दोनों भाई खेलना। ठीक है न ? झगड़ा नहीं करोगे न आपस में ?'

साधन ने चाट-पोंछकर खीर खा ली। पल्टू की मां ने अपने हाथ से उसका मुंह धोकर पोंछ दिया। पल्टू की नाक से पानी बह रहा था, वह भी साफ किया। उसके बाद पल्टू का भी मुंह धोकर बोली, 'जाओ, अब तुम लोग खेलने जाओ।'

उसी समय साधन के मां तथा पिताजी वहां आ पहुंचे। वे बगल के मकान में किसी से मिलने आये थे। साधन की मां ने साधन से कहा, 'चल, अब घर चलना पड़ेगा।'

पल्टू की मां ने कहा, 'इतनी जल्दी कैसे जायेगी ! अभी तो आयी है। थोड़ी देर तो बैठ। इन लोगों को खेलने दे।'

साधन की मा ने पल्टू को गोद में उठाने की कोशिश की, पर वह किसी तरह भी उनकी गोद में नहीं गया। साधन की मा ने पल्टू की मा से कहा, 'कनक, तेरा बेटा कितना खूबसूरत लगता है ! गहरे तथा घुंघराले बाल, कटीली आंखें—'

पल्टू की मां मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई बेटे की ओर देखती रही। साधन [illegible] पल्टू खेलने के लिये चले गये।

नदी पर ऊंचा पुल बना हुआ है। बरसात का मौसम है। थोड़ी [illegible] बरसात होकर चुकी है। आकाश, पृथ्वी तथा पेड़-पौधे सब धुले-[illegible]

-से लगते हैं। घास की नोक पर पानी की बून्दें टिकी हुई हैं। शाम के की हवा सरसराहट की आवाज कर रही है। और उस स्वच्छ वातावरण खेल रहे हैं दो शिशु।

क घेर-घुमेर कदम के पेड़ में गुच्छे-के-गुच्छे अनगिनत फूल खिले हुए थे, पर न बच्चों के हाथ फूलों तक नहीं पहुंच रहे थे। बहुत उछलने पर भी फूल हाथ नहीं आये उनके।

पल्टू ने पूछा, 'सावन दा, तुम गाछ पर चढ़ सकते हो?'

सावन ने बहुत ही समझदार की तरह कहा 'बरसात के दिनों में गाछ पर नहीं चढ़ना चाहिए। इन दिनों गाछ में सांप रहते हैं। हरे रंग के सांप।'

'मैंने सांप देखा है। तुमने देखा है कभी?'

'बहुत, बहुत बार।'

'कदम फूल के पेड़ पर सांप नहीं रहते।'

'हां, तुझे अधिक मालूम है! तुझे पूछकर चढ़ेगा कदम के पेड़ पर सांप!'

'हां, मालूम तो है ही। मैं और दीदी एक दिन इस गाछ पर चढ़े थे।'

'जा झूठे!'

'सच। अच्छा फिर चढ़कर दिखा दूं?'

'अगर तू गाछ पर चढ़ेगा तो मैं चाची से कह दूंगा। गाछ भीगा हुआ है। चढ़ेगा तो फिसल जायेगा। आ, हम आंख-मिचौली खेलें।'

थोड़ी ही देर बाद पल्टू दौड़ा-दौड़ा अपनी मां के पास गया और नाक फुला-कर बोला, 'मां, सावन दा ने मुझे मारा है!'

सावन की मां ने कहा, 'उसने तुझे मारा? बुलाकर लाओ उसे। मैं उसे खूब डांटूंगी। आ बेटे, मुझे दिखा, कहां लगी है? मैं सहला देती हूं। थोड़ी लगी है या ज्यादा?'

पल्टू ने कहा, 'थोड़ी ही लगी है।'

पल्टू की मां ने पल्टू को डांटते हुए कहा, 'खेल-खेल में इस तरह शिकायत न[illegible] करते। जाओ। खेलते समय ऐसा ही होता है। जाओ, फिर से खे[illegible] जाकर।'

आख-मिचौली के खेल मे सावन कभी भी पल्टू को पकड़ नही पाता। वहुत ही सतर्क होकर नदी के बाध पर चढ़कर झांका उसने पर वहा कोई भी नही था। पल्टू कही भी नजर नहीं आया।

डरते-डरते, कापते गले से साधन ने चिल्लाकर पल्टू को आवाज दी, 'ऐ पल्टू ! कहा गया ? पल्टू—उ-उ-उ ! '

पास से ही आवाज आई, 'ढूढ लो।'

साधन ने गर्दन घुमाकर चारों ओर देख लिया पर पल्टू कही भी दिखाई नहीं दिया।

पल्टू कदम के गाछ पर फूलों के झुड के भीतर छुपा बैठा था। वह खिल्ली उड़ाने के से अन्दाज मे बोला, 'हार गये, साधन दा हार गये ! मुझे नही ढूढ सके। साधन दा मुझे पकड़ नही सकते।.....'

■ ■ ■

क्या था विधाता के मन में

प्रमथनाथ वीसी

○ ○ ○ ○

'क्या था विधाता के मन में ?' पर सच पूछा जाये तो 'क्या था विधाता के मन में' यह खुद विधाता को भी कहां मालूम था ? खुद विधाता के लिए भी हर बात, हर समय पहले से ही जान लेना भला संभव है ? और अच्छा भी है कि हर समय, हर बात पहले से उन्हें भी मालूम नहीं होती, नहीं तो इस रसीली दुनिया का बहुत-कुछ रस सूखकर यह विश्व-संसार भी गणित की पुस्तक की तरह नीरस हो जाता। तभी तो विधाता ने अपने और सृष्टि के बीच थोड़ा-सा परदा रखा है, यानी जानकर भी अनजान बना रहता है।

उत्तर-मेरु की उज्ज्वल हिमशिला-राज्य की एक दुग्ध-धवल हिमशिला शनैः-शनैः जब पुष्ट-मजबूत होकर भीषण रूप धारण कर रही थी तब स्कॉटलैण्ड के जहाज-निर्माण कारखाने में भी एक विशालकाय जहाज का निर्माण-कार्य चल रहा था, पर उसके भयावह दुःखद परिणाम का उस समय भला किसे पता था ! अगर विधाता को इस बात का आगे से पता भी था तो उन्होंने इस

रहस्य को अपने तक ही सीमित रखा। हल्का-सा आभास भी अगर वे देते तो लाखों लोगों की प्राण-रक्षा की जा सकती थी। हिमशिला के आघात से टाइटानिक जहाज के डूबने को एक आकस्मिक दुर्घटना कह सकते हैं। उस दुर्घटना को नियम न कहकर नियम का व्यक्तिक्रम कहे तो ज्यादा उचित होगा। फिर भी कहने का साराश यह है कि नियम के व्यक्तिक्रम मे ही नियम के अस्तित्व का प्रमाण निहित रहता है। उसी नियम के अनुसार मैं यहा एक घटना का विवरण देने को प्रस्तुत हुआ हू जिसमे अप्रत्याशित सघर्ष के फल-स्वरूप एक पुरुष और एक नारी दोनों ही डूबते हैं। टाइटानिक मे तो सिर्फ पुरुष ही डूबे थे।

शहर के एक ही मोहल्ले के दो अलग-अलग मकानो मे अनुपम और अनिन्दनीया रहते थे। वे एक-दूसरे को बिल्कुल नही जानते थे। जानते भी कैसे ? जानने का कोई कारण भी तो नही था। उनके रास्ते सिर्फ भिन्न ही नही एकदम विपरीत थे। फिर भी पता नहीं विधाता को क्या मजूर था !

जिस समय अनुपम गीता पढता उस वक्त अनिन्दनीया 'दि केपिटल' पढती। जब अनुपम की खद्दर की धोती छोटी होते-होते घुटनों तक आ पहुची थी तब अनिन्दनीया की साड़ी प्रायः धूल बटोरती चलती। अनुपम का सिद्धात था कि लज्जा निवारण के लिये जितना कपडा आवश्यक है उससे अधिक ग्रहण करना चोरी है जबकि अनिन्दनीया का खयाल था कि खाने-पहनने में कजूसी करना पागलपन है। अनुपम जब वन्देमातरम् की आवाज बुलन्द करता तब अनिन्द-नीया लालित्यपूर्ण वाणी में इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा लगाती। अगर यही तक होता तो कोई खास बात नहीं थी क्योंकि ऐसा तो प्रायः हर घर में ही होता है। इतनी-सी बात की कहानी नही बन सकती, सिर्फ नीरस विवरण लिखा जा सकता है; लेकिन जब इसी नीरस और साधारण-से विवरण पर हठात् यह बात लागू हो गई, 'क्या था विधाता के मन मे ?' तो यही विवरण एक कहानी बन गयी और इसके सवाद बन गये काव्य।

ऐसे ही समय मे राजनैतिक आन्दोलन के जोर से लोगों के दिलों मे दबी आग बाहर निकल पड़ी और परिणामस्वरूप चारो ओर उसका ही ताप और कोला-हल सुनाई पडने लगा। हा, एक बात बताना मैं भूल ही गया था। अनुपम जितना ही निष्ठावान काग्रेसी था अनिन्दनीया उतनी ही निष्ठावान कम्युनिस्ट थी। पर मैं भूल गया तो क्या हुआ, मेरे पाठक अवश्य ही समझ गये होंगे।

क्योंकि निष्ठा, पुरुषों का स्वभाव है, इसलिए वह बदल सकती है, पर नारी की निष्ठा नहीं वदलती। यह उसकी प्रकृति होती है। चाहे पति हो, चाहे धर्म, चाहे राजनीति—नारियां अपनी निष्ठा की हर वस्तु को मरते दम तक मुट्ठी में वन्द रखना चाहती हैं। अनिन्दनीया का विश्वास है कि राजनीति ही वर्तमान युग का धर्म है जबकि अनुपम का कहना है कि धर्म ही वर्तमान युग की राजनीति है। दोनों के मत, पथ, आचार, आचरण तो खैर अलग-अलग थे ही, राजनीति को लेकर तो जमीन-आसमान का फर्क था। सिर्फ यही क्यों, चेहरे और आकार-प्रकार में भी दोनों में कोई साम्य नहीं था। अनुपम स्वस्थ, सुन्दर, लम्बा, सुपुरुष दिखाई पड़ता था। रंग भी गोरा था। दस व्यक्तियों के बीच खड़ा होने पर भी सबसे अलग दिखाई पड़ता था। और अनिन्दनीया ? छरहरा शरीर, आंख और चेहरे के भाव में तीखी धार जैसा भाव मानो ईश्वर तलवार गढ़ने बैठा और बना बैठा तनु-लता। और रंग ? केले के वृक्ष के गर्भ से जब पहले पत्ते की कोंपल थोड़ी-सी बाहर झांकती है, उस समय उसका जैसा रंग होता है, ठीक वैसा ही रंग था अनिन्दनीया का। रंग के साथ उसके नाम का कोई मेल नहीं था। अरुणोदय की प्रथम किरण के कुशल हाथों से बुनी सुन्दर बनावट जैसी थी वह। उसके माता-पिता के पास कितने ही पात्र शादी की इच्छा लेकर आये पर लड़की का एक ही जवाब था कि वह शादी नहीं करेगी।

विवाह सम्बन्धी समस्या पर शायद कुछ और आगे तक खींच-तान होती पर ऐसे ही वक्त शहर में आन्दोलन छिड़ गया। अनुपम तथा अनिन्दनीया के नेतृत्व में कांग्रेसी और कम्युनिस्ट दल आमने-सामने आ खड़े हुए। वन्देमातरम् और इन्कलाब-जिन्दाबाद के नारे एक-दूसरे से प्रतियोगिता कर रहे थे। दोनों ही दलों के लोगों के हाथों में पताकाएं एवं अनेक तरह के आकर्षक और उत्तेजक नारों से सजे फेस्टून थे जो संभवतः सम्बन्धित नेताओं के समयोचित निर्देशानुसार लिखे गये थे। अब जबकि दो परस्पर विरोधी दल आमने-सामने आ डटे थे तो कुछ अप्रत्याशित घटित होना अवश्यम्भावी था ही। यह बात न्यूटन सम्बन्धी किसी नियम के अन्तर्गत आती है कि नहीं यह तो पता नहीं, पर राजनैतिक आंदोलन का ध्रुव नियम है यह। मुहूर्त भर में फेस्टून का मान-दण्ड राज-दण्ड के रूप में प्रगट हुआ। तभी समझ में आया कि फेस्टून

के सिर की ओर बढ़ते ही, 'हैं, हैं, यह क्या करते हो ? हमलोग अहिंसावादी हैं' कहता हुआ अनुपम आगे बढ़ा। पर उसके मुंह की बात पूरी नहीं हो पाई, क्योंकि अहिंसक आघात बड़ा ही हिंसक होता है शायद इसी के प्रमाणस्वरूप सिर पर गहरी चोट खाकर अनुपम धराशायी हो गया और साथ-ही-साथ बेहोश भी हो गया।

घटना को विचित्र रूप से पलटते देख दोनों ही दल स्तब्ध हो गये। उस स्तब्धता को भंग करके सिर्फ अनिन्दनीया के मुंह से धिक्कार गूंजी, 'क्या यही तुम्हारी अहिंसा है ?'

काग्रेंसियों के नेक्स्ट इन कमाण्ड ने कहा, 'अहिंसा तत्व को समझना तुम्हारा काम नहीं है। शत्रु के प्रति अहिंसक होने का हमें हुक्म मिला है, किन्तु अनुपम दा तो हमारे शत्रु हैं नहीं।'

पर उस वक्त अहिंसा तत्व पर विचार करने लायक मन.स्थिति न होने के कारण दोनों दल मिलकर अनुपम को साथ ले गये। साथ गई थी अनिन्दनीया। पता नहीं, 'क्या था विधाता के मन में !'

दूसरे दिन अनिन्दनीया अनुपम को देखने अस्पताल गई तो उसने पाया कि सिर पर पट्टी बांधे अनुपम पलंग पर पड़ा है। वह थोड़े-से फूल तथा फल ले गई थी। उनको पास की टेबिल पर रखकर वहीं खड़ी रही। थोड़ी देर बाद अनुपम ने आखें खोलकर उसकी तरफ देखा, पर उसको पहचान नहीं पाया। रोगी ने आखें वापस मूंद लीं। आखिर जब मिलने का समय खत्म होने की घण्टी बजी तब एक दीर्घ नि.श्वास छोड़ वह चली आयी।

□

अगले दिन अनिन्दनीया फूल तथा फल ले उसी वक्त फिर गयी। आज रोगी की हालत में काफी सुधार नजर आया। वह उधर ही देख रहा था। अनिन्दनीया को देखते ही पहचान गया और पूछा, 'तो क्या आप कल भी आई थीं ? ये फूल और फल आप ही रख गई थीं ?' अनिन्दनीया के मौन को स्वीकारोक्ति समझकर अनुपम ने कहा, 'पर आप सफेद फूल क्यों लाईं ? अपने राजनैतिक सिद्धान्त के अनुसार तो आपको लाल फूल लेकर आना चाहिये।' फिर उसके हाथ की तरफ देखकर बोला, 'ओह, आप तो आज भी लाई हैं ! लेकिन क्यों ? यह सब क्या विजयी के अहङ्कार-चिन्ह हैं ?'

न्दनीया ने मुस्कराकर कहा, 'पहले आप ठीक तो हो लीजिये, उसके बाद मसले पर विचार किया जायेगा।'

रा स्वस्थ होना तो, अगर मैं गलत नहीं कहता, आप लोगों की आकांक्षा नी नहीं चाहिये। जिसने लाठी मारी थी वह........'

आपको गलतफहमी हुई है, अनुपम बाबू। लाठी तो आपके ही कांग्रेसी स्वयंसेवक ने मारी थी, और मुझे मारी थी। आपने खामखाह अपना सिर बीच में देकर यह अनहोनी कर डाली। वह लाठी अगर मेरे सिर पर पड़ी होती तो मैं खत्म ही हो जाती। पर कांग्रेसी लोगों का सिर बहुत ठोस होता है न, इसीलिए इस बार आप बच गये।'

जवाब में अनुपम कुछ कहने जा रहा था कि लड़की ने बीच में ही रोककर कहा, 'आज के लिए इतनी बातें काफी हैं। हां, आपका मन नहीं भरा हो तो कल सुना लीजियेगा।'

'तो आप कल भी आयेंगी? लेकिन क्यों? मुझ पर जासूसी करने का तथा मुझे नजरों के सामने रखने का भार शायद आपको ही सौंपा गया है!'

लड़की ने हंसकर कहा, 'हां, मुझे भी यह नजरों के सामने रखनेवाला मामला ही लगता है।'

'यह क्या! आप चल दीं?'

'हां। घण्टी बज चुकी है। जाने का समय हो गया है।'

उसको जाते देख अनुपम ने कहा, 'अगर मैं आज की ही रात यहां से भाग जाऊं, तो?'

'अगर ऐसा ही हुआ तो भाग जाने के बाद विचार किया जायगा। आज तो मैं चली।'

□

दूसरे दिन फिर ठीक समय पर लड़की आ उपस्थित हुई। आज उसके हाथ में फूल और फल के अलावा सन्देश भी थे। उसने देखा कि अनुपम के सिर की बैण्डेज खोल दी गई है तथा बाल बहुत ही छोटे-छोटे काट दिये गये हैं जिसके फलस्वरूप वह बहुत ही कृश-काय दीख रहा है। लड़की के हृदय को आघात पहुंचा उसका चेहरा देखकर। बोली, 'क्यों बेकार ही मुझे बचाने के लिए अपना सिर आगे किया आपने?'

'अगर सब सुनना चाहती हो तो नवकुमार की भाषा में जवाब देना पड़ेगा। बहुत-से लोग दूसरों का दायित्व निभाने के लिए ही जन्म लेते हैं।'

अनिन्दनीया ने कहा, 'नवकुमार की स्वीकारोक्ति का शेष कथन क्यों गोल कर गये ? कह दीजिये न, तुम भले ही अधम हो, लेकिन मैं महान क्यों न बनूं ?'

इस बार अनुपम ने कहा, 'एक तो आने का कष्ट वहन करती ही हैं आप, ऊपर से यह खर्च क्यों ?'

'जब खर्च हो ही चुका है तो फिर खाइये भी।' कहकर एक सन्देश अनुपम के हाथ पर रख दिया।

अनुपम ने सन्देश खाते-खाते कहा, 'तो आप क्या सिर्फ दृष्टि-भोग ही करेंगी ?'

अनिन्दनीया ने हंसकर कहा, 'भोग की तो शुरुआत है, पता नहीं मेरी किस्मत में अभी और क्या-क्या भोगना लिखा है !'

विदा लेते वक्त लड़की के हाथ में गुलाब का फूल देते हुए अनुपम ने कहा, 'अस्पताल के बगीचे से आपके लिए ही लाया था।'

'बेकार ही क्यों कष्ट किया आपने ?'

'आप तो रोज ही कष्ट करती हैं, एक दिन मैंने भी किया समझिये। कष्ट के ऋण का शोध कष्ट से ही होता है।'

लड़की ने कहा, 'समझी। बदला चुकाकर सारे सम्बन्ध ही खत्म करना चाहते हैं !'

'सम्बन्धों की तो यह शुरुआत हुई है, भई। बाद में जब फिर दोनों दल आमने-सामने होंगे तब इससे भी जोर से लाठी मारकर भूल का संशोधन कर लेना।' अनुपम ने कहा।

'मेरा खयाल है, वह शक्ति तो आपकी अहिंसक लाठी में ही अधिक है।'

'अच्छा बताइये, आपको किस नाम से पुकारूं ? अनिन्दनीया नाम तो बहुत ही भारी-भरकम है, अतः इसको ढोने के लिए मजदूर की आवश्यकता पड़ेगी।'

'तो ठीक है, एक अक्षर कम करके आप मुझे निन्दनीया कह सकते हैं। तब तो थोड़ा हल्का हो जायेगा न ?'

'फिर भी खास हल्का नहीं हुआ। मैं सोचता हूं, थोड़ा और छोटा करके निन्दा नाम से ही क्यों न पुकारूं ?'

ने जवाब दिया, 'इस नामकरण के कारण लोग आपके सिवाय और
की निन्दा नहीं करेंगे । फिर भी आपको उसी में खुशी हो तो आप उसी
से पुकारिये । अच्छा, तो आज मैं चली ।'

ले दिन उसी समय आकर अनिन्दनीया ने देखा कि अनुपम जाने के लिये
ार बैठा है ।

ाज सुबह दस बजे ही मेरी छुट्टी हो गयी थी । डॉक्टर से कहकर कुछ घण्टा
ौर रहने की इजाजत मांगी है ।'

लड़की ने कहा, 'यह तो मैं आज नई बात सुन रही हूं कि अस्पताल में भी कोई
रोगी खुशी-खुशी अधिक रहना चाहता है ।'

उसने अतिरिक्त समय मांगकर अस्पताल में क्यों रहना चाहा, यह बात अनिन्द-
नीया को न समझते देख अनुपम को थोड़ा दुःख हुआ । उसके चेहरे का म्लान
भाव अनिन्दनीया से छिपा नहीं रहा । मन-ही-मन वह खुश हुई । लड़कियां
समझती सब कुछ हैं, सिर्फ न समझने का ढोंग करती हैं ।

'अब क्या यहीं खड़े रहेंगे ? जब छुट्टी मिल ही गयी है तो चलिये, आपको
पहुंचा आऊं । मेरे पास गाड़ी है ।'

'घर की गाड़ी है शायद ? सचमुच, घर की गाड़ी बिना कम्युनिष्ट होने का
सुख नहीं है !'

लड़की ने उस बात का कोई जवाब न देकर पूछा, 'आपलोग भी कार में बैठते
तो हैं न ? फिर आपने ऐसी विचित्र बात क्यों पूछी, बताइये तो ? वैसे मैंने
सुना है, बहुतों की धारणा है कि बैलगाड़ी के अलावा और किसी गाड़ी में
बैठने से कांग्रेसी लोग जाति-बाहर समझे जाते हैं ।'

गाड़ी दौड़ी जा रही थी । अचानक अनुपम ने पूछा, 'हमें जाना है मध्य
कलकत्ता । आप गंगा-किनारे क्यों ले आईं मुझे ? गंगा-प्राप्ति करवाने का
इरादा तो नहीं ?'

'अगर गंगा की हवा खाने से ही गंगा-प्राप्ति होती है तो आप यही समझ
लीजिये ।'

'कई दिनों से तो आप संदेश खिला रही हैं, अब भला हवा खाने की जगह बची
होगी मेरे पेट में ?'

'मुझे तो सन्देश खाने के लिए आपने एक बार भी नहीं कहा, अतः सिर्फ हवा खाने के अलावा मेरे पास और चारा ही क्या है ?' अनिन्दनीया ने जवाब दिया।

कुछ कहने-सुनने को न होने पर भी जब आदमी बोले ही जाता है तब समझ लेना चाहिये कि उसकी अवस्था स्वाभाविक नहीं है। काम की बात हो तो दो मिनट में पूरी हो जाती है पर बेकार बातें द्रौपदी के चीर की तरह हैं। उन्हीं बेकार बातों में मुग्ध होकर पन्द्रह मिनट का रास्ता जब डेढ़ घण्टे में तय करके अनुपम के घर के दरवाजे के सामने गाडी पहुंची तब शाम प्रायः पूरी तरह झुक आयी थी।

अनुपम ने कहा, 'भीतर चलिये।'

'नहीं। आज नहीं। रात हो गई है।'

'लगता है, फिर से सिर फुड़वाकर हॉस्पिटल में भर्ती होना पड़ेगा। अन्यथा तो अब आपसे भेंट होनी सम्भव नहीं।'

'मैं क्या फ्लोरेन्स नाइटेंगल हूं जो अस्पताल में घूम-घूमकर रोगी की सेवा करती फिरती हूं ?'

अनुपम ने पूछा, 'अब कब मिलना होगा ?'

'जल्दी तो नहीं।' कहकर अनिन्दनीया गाडी में जा बैठी और गाड़ी अनुपम की आंखों से दूर हो गई। जितनी देर पीछे की लाल बत्तियां दिखाई पड़ती रही अनुपम एकटक उधर ही देखता रहा।

'जल्दी तो नहीं' शब्द कांटे की तरह अनुपम के दिमाग में सारी रात चुभता रहा। स्वप्न एवं जागरण के बीच की स्थिति में झूलता रहा वह।

दो दिन पहले जो अपरिचित थी या फिर शत्रु-पक्ष की थी, उसी के लिए इतनी तड़प क्यों ? लगता था, उसके वे छोटे-छोटे तीन शब्द छोटी छुरी के घाव की तरह उसके हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर रहे थे।

संसार में दुःख-सुख दोनों ही अप्रत्याशित होते हैं—इस पुरातन उक्ति की नवीन व्याख्या तब हुई जब दूसरे दिन शाम को अनिन्दनीया की गाड़ी अनुपम के घर के सामने आ खड़ी हुई। दार्शनिकों का कहना है कि 'समय' शब्द स्थिति-सापेक्ष है। शीघ्र शब्द की स्थिति-सापेक्षता अपरिमीम है। अगस्त्य मुनि विन्ध्य

यह कहकर गये थे कि शीघ्र लौटूंगा, और फिर लौटे ही नहीं। इधर न्दनीया कह गई थी कि जल्दी तो नहीं, जबकि चौबीस घण्टे भी पूरे नहीं। शब्द-शास्त्रों की महिमा भी अपार है।

निन्दनीया को गाडी से उतारकर घर के भीतर ले जाते समय अनुपम सोच हा था कि कल की रात उसने बेकार ही दुःस्वप्न में काटी थी। जल्दी तो नहीं का अर्थ उसने दो-चार साल से ही क्यों लगाया? दो और चार को पास-पास लिखने से चौबीस घन्टे भी तो हो सकते थे। और वही हुआ भी।

अनुपम ने अनिन्दनीया का परिचय अपनी मां से कराया। बोला, 'मां, यही लड़की है जो अस्पताल जाकर मेरी देख-भाल किया करती थी। मेरी बहुत सम्भाल की है इसने।'

मां लड़की को देखकर कितनी मुग्ध हुई यह तो बाद में पता चला। दो दिन बाद ही उन्होंने लड़के से कहा, 'बेटे, लड़की तो बहुत अच्छी है। तुम्हारी शादी ऐसी ही लड़की से हो तो बहुत अच्छा रहे।' विवाह-योग्य कन्या की पुत्र-वधू के रूप में कल्पना करना मांओं की सनक होती है।

'वह लड़की शादी नहीं करेगी, मां। इस ओर से तुम निश्चित रहो।'

मां ने कहा, 'चल पगले! साठ बरस की मैं होने को आई। लड़कियां तो बहुत देखीं पर ऐसी लड़की नहीं देखी जिसकी शादी करने की इच्छा न हो। सीताजी ने धनुष-भंग का प्रण किया था, फिर भी उनकी शादी अटकी नहीं।'

□

एक दिन अनिन्दनीया ने अनुपम की मां से कहा, 'कई दिन हॉस्पिटल में रहने से ये कमजोर हो गये हैं। मैं जरा इनको गंगा-किनारे घुमा लाऊं।' उसके इस कथन को अनुमति चाहना नहीं कह सकते। अनुमति, प्रार्थना और इच्छ ज्ञापन के बीच की स्थिति कह सकते हैं।

प्रिन्सेप घाट के पासवाले घने हरे मैदान में दोनों बहुत देर तक घूमते रहे फिर गंगा-किनारे बनी बेंच पर दोनों ने पास-पास बैठकर मूंगफली खाई फिर तो रोज की उनकी यही रूटीन हो गयी। एक दिन प्रिन्सेप घाट के बैठे अनुपम और अनिन्दनीया बातें कर रहे थे कि अनुपम ने कहा, 'निन्द मन-ही-मन बहुत आत्मग्लानि महसूस करता हूं। देश में राजनैतिक आन्द रहे हैं और मैं बेकार वक्त बरबाद करता हूं।'

लड़की ने कहा, 'क्या करें पम, तुम्हारा शरीर तो अभी भी काम लायक नहीं हुआ है।'

अनुपम और अनिन्दनीया दोनों के नाम संक्षिप्त होकर जब पम और निन्दा में परिणत हो गये तथा आप सम्बोधन तुम पर आ गया, तो समझ लेना चाहिये कि इस बीच बहुत-कुछ घट चुका है जो बाहरी लोगों को मालूम नहीं है। संसार की गति इसी तरह बहुत-से मध्यवर्ती अंशों को बाद देती हुई चला करती है।

कुछ देर चुप रहकर अनुपम ने कहा, 'बस थोड़ा-सा और आराम कर लेता हूं। शरीर थोड़ा ठीक होते ही फिर से राजनीति में भाग लूंगा। धर्म ही इस युग की राजनीति है।'

लड़की ने कहा, 'ठीक ही है। तुम ठीक हो जाओ तो फिर मैं भी राजनीति में योग दूं। राजनीति ही इस युग का धर्म है।'

'तब फिर क्या हमारी मुलाकातें नहीं होंगी?'

लड़की ने जवाब दिया, 'बल्कि और जल्दी-जल्दी होंगी। बिल्कुल धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में।'

अनुपम ने कहा, 'हो गया बेड़ा गर्क! यह तो एकदम गीता जैसी स्थिति होगी।'

'न हो तो तुम मार्क्सवाद अपना लो, मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन भविष्य में अपने दोनों दलों का सामना होने पर दूसरे का सिर बचाने के लिये अपना सिर आगे न बढ़ा देना।'

अनुपम ने कहा, 'वादा नहीं कर सकता। सारी बात इस पर निर्भर करती है कि सिर किसका है?'

इसी तरह अनर्गल अन्तहीन बातों की तरंगें सामने बहती गंगा की तरह प्रवाहित होती रहती थीं और उधर अन्धकार की तूलिका महत्व दीपालोकित कलकत्ता शहर के आकाश को काला करने की कोशिश करती रहती थी।

इन कुछ ही दिनों में अनुपम की धोती की झालर घुटनों से नीचे उतरती-उतरती प्राय टखनों को छूने लगी थी तथा खद्दर का सूत महीन होते-होते इतना सूक्ष्म हो गया था कि मिल का छद्मवेशी लगता था। इधर अनिन्दनीया

की साड़ी रंगीन हो गयी थी तथा उसमें वैसाखी गुल्म के फूल खिलने लगे थे। अनुपम के चरखे पर मकड़ी ने जाला बुन रखा था तथा गीता पर इतनी धूल जम गई थी कि एक फसल तैयार की जा सकती थी। अनिन्दनीया की मार्क्सवाद सम्बन्धी किताबें भी तकिये के नीचे पड़ी-पड़ी उसकी ऊंचाई कुछ और बढ़ाने का गौरव प्राप्त कर रही थीं। अनिन्दनीया के साथ पुस्तकों का अब यही सम्बन्ध रह गया था। अनुपम सोचता कि उसके कर्तव्य में त्रुटि हो रही है और पार्टी के लोग पता नहीं क्या सोच रहे होंगे; उधर अनिन्दनीया को लोग बुलाने जाते तो जवाब मिलता कि सिर्फ जुलूसबाजी करना ही राजनीति नहीं है। घर जाकर इस विषय की किताबों का भली प्रकार अध्ययन करो। पर सच्ची बात यह थी कि दोनों पक्षों के ऊर्ध्व में एक तृतीय पक्ष भी था। और वह था शायद देवता। राजनीति अगर विशेष युग की होती है तो वह देवता निर्विशेष युग का होता है। उनके लिये चाहे शत्रु-पक्ष हो या मित्र-पक्ष, दोनों पक्षों के आमने-सामने आने पर वे बहुत ही कौतुक महसूस करते हैं, और फिर एक छोटा-सा बाण छोड़ते हैं। कहना उचित होगा कि वही देवता अनुपम और अनिन्दनीया के सिर पर सवार हो गया था। उन्हीं की महिमा का फल है कि अनुपम तो पम हो गया तथा अनिन्दनीया निन्दा बन गई और उन दोनों के परस्पर आप सम्बोधन तुम पर आकर ठहर गये। इतनी-सी बात शायद वे दोनों नहीं जानते या फिर जानकर भी अनजान बनते हैं। मानसिक आत्म-प्रवंचना करने की शक्ति भी अपरिसीम होती है।

□

एक दिन शाम के वक्त निर्दिष्ट समय अनुपम के दरवाजे पर अनिन्दनीया की गाडी नहीं पहुंचने पर वह बहुत ही उद्विग्न हो उठा। आज इतनी देर क्यों हो रही है? मोहल्ले के लोगों ने गाड़ी की उपस्थिति देखकर घड़ी का टाइम मिलाना शुरू कर दिया था। ऐसी हालत में उद्विग्न न होना ही अस्वाभाविक होता। वह अधिक सब्र नहीं कर सका। बाहर निकल सीधा कम्युनिस्ट पार्टी के ऑफिस जा पहुंचा। उसे वहां देखकर कामरेड-गण घोर अचरज में डूब गये। एक ने कहा भी कि, 'आप''''और यहां ?' पर उसकी बात का जवाब देना बेकार समझ अनुपम ने पूछा, 'अनिन्दनीया कहां है ?' जवाब मिला कि वह आजकल यहां अधिक नहीं आती है। शायद घर पर ही हो। अपने अचानक इस तरह वहां आने की व्याख्या न कर वह सीधा अनिन्दनीया के घर की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच बिना भूमिका के घर में प्रवेश करते ही देखा

कि दरवाजे की ओर पीठ किये बहुत तन्मयता के साथ अनिन्दनीया कुछ कर रही है। दबे कदमों से ठीक उसके पीछे पहुंचने पर अनुपम ने देखा कि अनिन्दनीया चित्र बना रही है, और वह चित्र उसका यानी अनुपम का ही है। अनिन्दनीया को पता ही नहीं चला उसके आने का। वह तो बस चित्र अंकित करने में ही मग्न थी। साधारणत: चित्र बनाते वक्त मॉडल सामने रखा जाता है पर यहां मॉडल पीछे था। लेकिन जब मॉडल हृदय में ही बसा हुआ हो तो सामने रहे या पीछे, एक ही बात है। इसी तरह पता नहीं कितनी देर और गुजरती कि अनिन्दनीया की छोटी बहन ने कमरे में प्रवेश किया और अनुपम को वहां देखते ही खुशी के मारे लगभग चीखते हुए बोल उठी, 'देखो न दीदी, कौन आया है?' अनिन्दनीया ने पीछे मुड़कर देखा और देखते ही चित्र को झटपट आंचल में छिपा लिया। फिर बात बनाने के लिये यौंही कहने लगी, 'बहुत दिन हो गये चित्र बनाना छोड़े, इसीलिये आज देख रही थी कि मेरा हाथ ठीक चल रहा है कि नहीं।'

अनुपम उक्त व्याख्या की उपेक्षा कर बोला, 'आज आयी क्यों नहीं?'

'चित्र बनाने जो बैठी तो समय का होश ही नहीं रहा।'

'अब तो होश में आ गयी हो। चलो, तुमसे जरूरी काम है।'

दोनों गंगा-किनारे निर्दिष्ट स्थान पर आकर बैठे। सारे दुविधा-बन्धनों को तोड़ अनुपम ने कहा, 'निन्दा, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।'

अनुपम अगर निपट अबोध नहीं होता तो समझ सकता था कि इस बात को अनिन्दनीया बहुत पहले ही समझ चुकी थी। सिर्फ अनिन्दनीया ही क्यों, पार्टी व मोहल्ले के लोग भी इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे। अनभिज्ञ था तो सिर्फ नैष्ठिक कांग्रेस-कर्मी अनुपम सरकार ही था।

स्वत:सिद्ध बात का क्या जवाब दे यह जब अनिन्दनीया नहीं समझ पायी तब बोली, 'गंगा की धारा में आज इतना शोर क्यों हो रहा है? शायद इस वक्त ज्वार आया हुआ है!'

किस प्रत्याशा का कैसा उत्तर!

इस बार अनुपम ने कहा, 'निन्दा, तुम मुझसे शादी करोगी?'

आज अनुपम बिल्कुल विनीत हो उठा था। उसकी बात मानो सुनी ही न हो इस तरह से अनिन्दनीया फिर बोली, 'समुद्र कितना दूर है, फिर भी

उसके ज्वार के आघात से नद-नदियों का पानी उत्तेजित हो उठता है। यह बहुत ही अचरज की बात है न!'

अब अनुपम एकदम क्षुब्ध होकर बोला, 'भौगोलिक समस्या को इस वक्त छोड़ो और मेरी बात का जवाब दो।'

अनिन्दनीया खुद में ही मगन बोले जा रही थी, 'कहां तो लाखों मील की दूरी पर चांद, फिर भी किस अदृष्य आकर्षण शक्ति के वशीभूत हो समुद्र का पानी ज्वार-भाटा के रूप में सिर धुनता है। यह क्या अचरज की बात नहीं है, अनुपम बाबू?'

इतने दिनों बाद, इतना कुछ अघटनीय घट जाने के बाद, पम से फिर अनुपम बाबू हो गया वह! अनुपम क्षुब्ध हो उठा। बोला, 'समझ गया। अब घर चलो। सभी लड़कियां एक जैसी ही होती हैं।'

अनिन्दनीया ने निर्विकार भाव से कहा, 'यह सुनकर सचमुच मेरी चिन्ता ही मिटा दी तुमने। अब किसी भी एक लड़की से शादी कर लो, क्योंकि सभी लड़कियां तो एक समान होती हैं।'

मोटर में बैठने के बाद अनुपम ने एक भी बात नहीं की। बाहर अंधेरे में प्रकृति-शोभा देखने की कोशिश करता रहा। लड़कियां छोटी रहती हैं तब वे गुड़िया से खेलती हैं। जब बड़ी हो जाती हैं तब अबोध, सीधे, सरल पुरुषों से खेलती हैं। उस समय उनकी यह हालत हो जाती है कि आंख होते हुए भी देख नहीं सकतीं, कान रहते सुन नहीं सकतीं, हां, मुंह से बात अवश्य कर सकती हैं लेकिन वे होती हैं सिर्फ 'अर्थहीन बातें।'

'पम, तुम्हारे प्रस्ताव पर मैं राजी हूं, लेकिन मैं राजनीति को नहीं छोड़ सकती। राजनीति ही इस युग का धर्म है।'

'राजनीति छोड़ने को तुम्हें कौन कह रहा है, निन्दा? मैं ही क्या राजनीति छोड़ दूंगा? धर्म ही इस युग की राजनीति है।'

'एक बात और भी है, तुमलोगों की गीता मैं नहीं पढ़ सकूंगी।'

'क्यों? बहुत छोटी-सी किताब है। सिर्फ सात सौ श्लोक ही तो हैं।'

'हां, आकार में छोटी अवश्य है, पर प्रकार में नहीं। उसका टीका-भाष्य बारह हाथ की कांकुड़ बेल के तेरह हाथ लम्बे बीज की तरह है।'

'तुम गीता पर टीका-टिप्पणी कर रहीं हो तो मुझे भी कहना पड़ेगा निन्दा, कि तुम्हारे दि कैपिटल ग्रन्थ के पास तो कुछ भी नहीं है; प्रत्येक पाठक अपनी इच्छानुसार उसका अर्थ-कुअर्थ लगाता है।'

'खैर, गीता की बात जाने भी दो लेकिन पार्टी किस तरह छोड़ सकती हूं ?'

'तो ठीक है। तुम अपनी पार्टी में रहो, मैं अपनी पार्टी में रहता हूं। इसमें शादी में कहा बाधा पड़ती है ?'

'असंभव।' कहकर अनिन्दनीया गम्भीर हो गई।

तब फिर ?

'तब फिर और क्या कहूं, अनिन्दनीया ? शैव और शाक्त में क्या विवाह नहीं होते ? हिन्दू-क्रिस्तानों में क्या सिविल मैरिज नहीं होती ? फिर अपनी ही शादी असभव क्यों होने लगी ?'

अनिन्दनीया ने कहा, 'यह तुलना चलनेवाली नहीं है। शैव और शाक्त दोनों ही हिन्दू होते हैं। हिन्दू और क्रिस्तान दोनों ही धर्म को मानते हैं।'

'तुम भी तो धर्म को मानती हो। फर्क सिर्फ इतना है कि, तुम राजनीति को इस युग का धर्म मानती हो।'

'असली बात क्या है, पता है तुम्हे ? तुम हो इस युग के व्यक्ति, जबकि मैं भावी युग की हूं।'

अनुपम ने हंसकर उत्तर दिया, 'तो फिर वर्तमान का क्या होगा ?'

'यह मुझे पता नहीं है। लेकिन इतना जानती हूं कि इस तरह विवाह करके हम दोनों ही सुखी नहीं होंगे।'

'अच्छा निन्दा, तुम बता सकती हो कि शादी करके कभी कोई सुखी हुआ है ?'

अनिन्दनीया ने कहा, 'हा, बहुत से।'

'जिस काम को करने से सभी ठगे जाते हैं, उसकी अभिज्ञता क्या कोई ठीक से बताता है ? फिर भी सुनो, मैं बताता हूं, विवाहित जीवन में शान्ति नहीं है तो अविवाहित जीवन में भी शान्ति नहीं है।'

'वृथा तर्क करने से लाभ क्या है ? हमारी शादी नहीं हो सकती।'

ने तो इस तरह अपना सिद्धान्त स्थिर कर लिया, लेकिन सबसे शक्तिशाली
ान्त तो देवताओं के हाथ में था। उनके तेज बाण नित्य-प्रति ही उनको
य करके चला करते।

ीन दिन बाद अनिन्दनीया ने कहा, 'मैंने एक उपाय सोचा है। अब तुम
निश्चिन्त हो जाओ। कोई अड़चन नहीं होगी अब।'

इस बार अनुपम की बारी थी संक्षिप्त भाषण देने की। उसने कहा,
'असंभव।'

□

तीन दिन और बीते। उनकी मुलाकात रोज ही होती थी। कई बार तो एक
बार से अधिक भी हो जाती। इस बार अनुपम ने कहा, 'मैंने एक उपाय सोचा
है, तुम भी विचार कर देखो। जब हम राजनीति को छोड़कर रह नहीं सकते
तो एक काम क्यों न करें। तुम्हारी पार्टी और मेरी पार्टी दोनों को ही जाने
दें। क्यों न हम दोनों एक तीसरी पार्टी में शामिल हो जायें। फिर तो कोई
अड़चन नहीं आयेगी।'

'अच्छा, मैं सोचूंगी।' अनिन्दनीया ने कहा।

□

तीन दिन बाद फिर दोनों में प्रसंग उठा। अनिन्दनीया ने अनुपम ने पूछा कि
उसने क्या सोचा है? अनिन्दनीया ने कहा, 'तीसरी ऐसी कौन-सी पार्टी है,
मुझे तो नजर नहीं आ रही है।'

'मुझे आ रही है। जिनकी राजनीति हम दोनों के बीच की है, चलो उसी में
हम सहयोग दें।'

'ऐसी कौन-सी पार्टी है?'

'क्यों? पी. एस. पी. है न। वे लोग कांग्रेस तथा कम्युनिष्ट दोनों से
बराबर दूरी रखते हैं।'

ये अबोध नर-नारी अगर अपने होशो-हवास में होते तो समझते कि उन
इस युक्ति में कितना बड़ा झूठ तथा धोखा था। लेकिन उस अदृश्य देवता
...प्रभाव से ही उन पर ऐसा मुग्ध-भाव छाया हुआ था कि एक ...

सहारे अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए शादी-समारोह में उपस्थित होने को उदग्रीव हो रहे थे।

बस अब मेरी कहानी खत्म होने को है। इतनी बडी दुनिया में ऐसा तो होता ही रहता है। किसी घटना के प्रभाव से कितने ही आयोजन बन जाते हैं तो फिर खत्म भी हो जाते हैं। दिन भर की मेहनत के बाद जो बारूद भरी अनार तैयार होती है वह जरा-सी आग दिखाते ही अग्निफुहार छोड़ती हुई मिनिट भर में खत्म हो जाती है।

□

दूसरे दिन अनुपम और अनिन्दनीया पी. एस. पी. के ऑफिस पहुंचे और उनके सदस्य बन गये तथा उसके अगले ही दिन मैरिज रजिस्ट्रार के ऑफिस में पहुंचकर उन्होंने शादी के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर कर दिये। शायद यह कहने की जरूरत नहीं कि उसी दिन विधिवत वैदिक रीति से भी उनकी शादी हो गई।

इस कांड से कांग्रेस और कम्युनिष्ट दोनों पार्टियों के ही सदस्य स्तम्भित रह गये। इतने दिनों के राजनैतिक जीवन का अन्त आखिर इस काण्ड में हुआ! इस उपलक्ष्य में उन्होंने मिला-जुला जुलूस निकालकर उनके घर के सामने नारे लगाये और उन्हें धिक्कार दे आये। फिर भी खुशी की बात यह थी कि जुलूस के कारण उस दिन ट्राम-बस बन्द नहीं हुई, क्योंकि उनके घर के रास्ते में न ट्राम चलती थी, न बस। अगर अनुपम और अनिन्दनीया को यह मालूम होता कि 'क्या था विधाता के मन में' तो वे पहले से ही सावधान रहते।

□□□

यह एक विचित्र अंधकार

आइभि राहा

० ० ०

'ऐ देख, देख न ! मां कसम, पहचाना-पहचाना-सा लग रहा है। याद नहीं आ रहा है, कहां तो देखा है !'

'अरे, वह तो पिकलू है। पिकलू ! तुम्हें याद नहीं ? हमारे साथ आशुतोष कॉलेज में पढ़ा करता था न ?'

'ओह हां, वही, अंग्रेजी साहित्य का पिट्ठू ! हम बंगला पढ़ते थे इसलिये जो उपेक्षा करता था हमारी। आंख-मुंह की एक खास मुद्रा बनाकर कहा करता था, अनां छोड़ो भी यार, इस देश का साहित्य भी कोई साहित्य है ?'

'हां-हां, याद आ गया। तो पड़ौस की वह.....'

'जो भी कहो, यार है चीज ! लेकिन कैसे फंसा लिया, बता तो सही ?'

'यह ऐसा कौन मुश्किल काम है ! दो रुपये अस्सी पैसे सिनेमा के और ऊपर से एक कटलेट, बस।'

'बेटा हमको भी रंग दिखाता है। क्या शेयर करने से डर लगता है ?'

'हां, यार। अपना तो मूत्ता-ही-मूता है। जलाकर राख कर दिया है साले ने।'

□

हमारे घर के चबूतरे पर ही उनका अड्डा जमता था। रोज आकर बैठ जाते। हल्ला-गुल्ला मचाते। राजनीति पर बहस करते। सिनेमा-स्टारों पर टीका-टिप्पणी करते। लड़की देखते ही आवाज कसने। फिर चाहे वह बचपन में गोद खिलायी मोहल्ले की लड़की हो या मां की उम्र की अन्य मोहल्ले की अपरिचित महिला। दादी ने एक दिन उनके शोर-शराबे से तंग आकर कहा था, 'अच्छा, क्या तुमलोगों को बैठने के लिये और कोई जगह नहीं मिलती जो यहां बैठकर इस तरह चीखते-चिल्लाते हो? तुम लोगों के मारे क्या हम दो घड़ी भजन-पूजन भी नहीं करें?' बस, इतना काफी था। फिर तो दादी के लिए पिंड छुड़ाना मुश्किल हो गया। उनमें से एक बोला, 'क्यों बुढ़िया, बहुत रुआब दिखा रही हो? जानती हो, किनसे बात कर रही हो? और हां, तुम्हारी नातिन के क्या हाल-चाल हैं? उसको क्यों नहीं भेज दिया? कोई फैसला ही कर डालते।' तंग पेन्ट पर कुरता पहने एक लड़के ने कहा, 'ज्यादा मत टर्रा बुड्ढी, नहीं तो तेरी नातिन की मिट्टी पलीद करके छोड़ेंगे।'

दादी गुस्से में बड़बड़ाती लौट गई थी। छोटे चाचा शाम को लौटे तो सारा किस्सा सुन संत्रस्त हो उठे। दादी पर गुस्सा भी बहुत हुए।

'उन सभी को मैं पहचानता हूं। उनके नाम भी जानता हूं। ये सभी मोहल्ले के प्रतिष्ठित घरों के लड़के हैं, पर खुद इनकी कोई इज्जत नहीं।'

□

'मां कसम, तू ही बता, कहीं चला जाय? चबूतरे पर थोड़ी देर निश्चिन्त होकर बैठ सकें, यह भी मुश्किल कर रखा है। मानो पुलिस आकर हुज्जत करेगी। ये पुलिसवाले भी तो बेटे उसी जाति के हैं जो कहते हैं कि, 'तूने नहीं तो तेरे बाप ने पानी गंदा किया होगा।' और कोई दुआ न सलाम, कोई बात न चीत, बस सीधे ले जाकर हवालात में ठूंस देंगे।'

कमल ने मानो कोई नई खोज की हो इस तरह की मुख-मुद्रा बनाकर कहा, 'ज्यू-गार्डन चलें? बहुत दिनों से उधर जाना ही नहीं हुआ। चलो न, आज वहीं चला जाय। खूब मजा....''

'तुम्हें और कोई जगह नहीं सूझी, मेरे चांद ?' कमल की बात काटते हुए असीम बीच में ही बोल पड़ा।

'ओह, तो चिढ़ते क्यों हो ? उसने तो खुद के लिए उपयुक्त जगह ही ढूंढ़ी है।'

दीपू की इस बात पर सभी हो-हो करके हंस पड़े।

लेकिन सुगन नहीं हंसा। कमल की बात का ही उसने जवाब दिया, 'धत्, वहां जाकर क्या करेंगे ? वहां जाकर तो यही देखने को मिलेगा कि सभी जानवर अपने-अपने जोड़ों के साथ प्रेमालाप कर रहे हैं। सालों को देखकर और मन खराब हो जाता है। हमारी किस्मत में तो वे सब जुटेंगी नहीं।''

'क्या बात करता है, यार ? बस इतनी-सी बात के लिये मन छोटा करते हो ? मैं तो ऐसी-ऐसी कितनी ही चीजें हाथ में आई हुई भी छोड़ देता हूं।'

असीम ने उपेक्षा दिखाते हुए कहा, 'रहने दे बस। तुझे डींग मारने की जरूरत नहीं है। हमें सब मालूम है, तेरी दौड़ कहां तक है ? हां, सचमुच कोई जोगाड़ हो तो चल, ट्रिंकाज में चलें।'

'तुमलोग सिर्फ यही सब करते रहोगे क्या ? कल की बात याद है न ?'

'कल ! कल क्या है ?'

'सब कुछ भूल बैठे हो, गुरू ?'

'परीक्षा ? पढ़ने-लिखने से कोई सरोकार ही नहीं, फिर वह सब किसे याद रहता है ?'

युनिवर्सिटी-बिल्डिंग के एक तल्ले से नीचे तक उनका साम्राज्य है। गेट के पास, सीढ़ी पर तथा कारीडोर में वे लोग अड्डा जमाये रहते हैं।

उस बार मृणाल हमलोगों के साथ परीक्षा नहीं दे सका था। परीक्षा के कई महीने पहले उसकी बैंक में नौकरी लग गई थी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत होशियार था। हम सभी जानते थे कि वह बहुत अच्छा रिजल्ट लायेगा। दो साल बाद वह इस बार परीक्षा दे रहा है।

मृणाल के गेट के सामने पहुंचते ही एक लड़के ने उसको डांटा, 'आप यहां क्या कर रहे हैं ?'

मृणाल नर्वस हो गया। उस वक्त शायद उसके दिमाग में परीक्षा की चिन्ता के अलावा और कोई बात नहीं थी। इसीलिये वह उम्र में अपने से छोटे

लड़के की इस बात का जवाब देते समय भी डर के मारे हकला उठा। बोला, 'जी, मैं परीक्षार्थी हूं।'

'सब्जेक्ट क्या हैं?' कड़ाई से पूछा गया।

'जी, इ''''इ''''इंग्लिश।'

'ऊपर चले जाइये। तीन तल्ले पर।' कमांडर जैसा हुक्म हो गया।

ऊपर पहुंचकर मृणाल परीक्षा-हॉल ढूंढ रहा था कि एक लड़का आगे बढ़ आया, 'यहां क्या कर रहे हैं?'

'मैं अपनी क्लास ढूंढ रहा हूं।'

'सबजेक्ट क्या है, इंग्लिश? इधर आइये। उस सामनेवाले कमरे में बैठ जाइये। जाइये! और हां, रुपये लाये हैं? दस रुपये लगेंगे।'

'द-स-रु-प-ये? क्यों? इ-इतने रुपये तो मैं लाया नहीं। मेरे पास तो सिर्फ छः रुपये हैं।'

लड़के ने व्यंग्य से होंठ बिचकाये। 'परीक्षा देने आये हैं और रुपये नहीं लाये? कहां के जन्तु हैं आप?'

फिर कहा, 'खैर दीजिये, छः रुपये ही दीजिये। किताबें-विताबें तो लाये हैं न? या कि वे भी''''''

'किताबें? किताबें किसलिये? किताबों का क्या होगा?'

'बेड़ा गर्क हो! तो फिर आप परीक्षा किस तरह देंगे? ना! आप तो शायद .... ऐसे ब्रेन से आप परीक्षा पास करके भी क्या करेंगे? रब्बिश! जाइये, जाकर अपनी जगह बैठ जाइये। '''' जाइये!'

मृणाल को मन-ही-मन क्रोध तो बहुत आ रहा था लेकिन फिर भी वह कुछ बोल नहीं सका। बल्कि भय और आशंका से वह भीतर-ही-भीतर कांप रहा था। क्लास में प्रवेश कर उसने एक बार चारों ओर देख लिया। सभी के पास आवश्यक कॉपी-किताबें थीं। मृणाल का खाली हाथ देख सबने उसकी हंसी उड़ाई। अजीब-अजीब चेहरे बनाये सभी ने जिनमें व्यंग्य एवं तिरस्कार जैसा भाव था।

मृणाल भी अपने को उस वक्त अपराधी महसूस करने लगा। वह बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा। जब प्रश्न-पत्र सामने आया तो उसने देखा कि ये सभी

श्न वही थे जिन्हें वह याद करके आया है। उसका जी खुश हो गया।
लेकिन उसने हॉल में चारों तरफ नजरें घुमायीं तो स्तब्ध रह गया। सभी सामने किताब खोले नकल कर रहे थे। मना करनेवाला कोई भी नहीं था।

मृणाल जो याद करके आया था अचानक सब भूल गया। उसने याद करने की बहुत कोशिश की लेकिन सफल नहीं हुआ। मानो सब गड़बड़ हो गया। तंग आकर वह उठ खड़ा हुआ। बाहर निकलते ही एक लड़के ने टोका, 'कहां जा रहे हैं? उठकर क्यों आ गये?'

'मैं परीक्षा नहीं दूंगा; घर जाना चाहता हूं।'

'परीक्षा नहीं देंगे? मतलब? तो फिर आये क्यों थे?'

दूर खड़े एक मस्ताने किस्म के लड़के ने वहीं से चिल्लाकर पूछा, 'क्यों रे लालटू, क्या मामला है? रौले कर न।'

'अरे गुरू, बाहर का माल चला जाना चाहता है।'

'पत्ती छोड़ी है?'

'अधिक नहीं। गुंजाइश नहीं है।'

'अरे भगा, खदेड़ उसे, कहां से साले सब····'

मृणाल उनके हाथ से मुक्ति पाकर सड़क पर निकल आया। इतनी देर के दबे क्रोध को उसने प्रकट किया एडमिट-कार्ड के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें सड़क पर फेंककर। इस वक्त उसे परीक्षा और एम. ए. की डिग्री आदि बातें नितान्त व्यर्थ एवं अर्थहीन प्रतीत हुईं।

□

'अरे, क्या सोचने लगीं? डरती हो?'

'नहीं, डरती नहीं। घर के बारे में सोच रही हूं। इस सब काण्ड के बाद वापस घर लौटने में बहुत खराब लग रहा है।'

'ओफ! तुम चिन्ता क्यों करती हो? अब और ज्यादा दिन तो हैं नहीं। देख लेना, इस बार के इन्टरव्यू में जरूर चुन लिया जाऊंगा।' दीपंकर की आवाज में एक प्रकार का दृढ़ आत्म-विश्वास था।

'तुम कैसे कह सकते हो यह ? ऐसी बातें तो तुम हमेशा ही कहते हो। सब फालतू बातें हैं।' शमिता ने अविश्वास प्रकट किया।

'पिछली बार तो उस साले डिरेक्टर की पत्नी का भतीजा आ टपका था बीच में; इसीलिए मैं रह गया। साला आकर टपका भी तो लास्ट मोमेन्ट में....। पर इस बार की बात और है। जो लोग इन्टरव्यू लेते हैं उनके चेहरे तथा आँखों के भाव से ही पता लग जाता है। भई, जब उन्हें किसी को लेना नहीं होता तो आलतू-फालतू क्वेश्चन पूछते हैं ताकि बेचारा उम्मीदवार खुद ही डरकर भाग जाये। इनलोगों ने तो मुझसे कुछ पूछा ही नहीं। इन्टरव्यू-बोर्ड में मेरे मझले जीजाजी थे न, इसीलिये तो....।'

'लेकिन अगर इस बार भी कुछ नहीं हुआ, तब ? पिताजी ने जैसा उत्पात मचा रखा है उससे तो लगता है, मेरी भी सीमा जैसी ही हालत न हो।'

'सीमा ! क्या हुआ है सीमा को ?'

'वाह ! तुम्हें नहीं मालूम ? उसने भी तो मेरी तरह किसी से बताये बिना ही रजिस्ट्री-मैरिज की थी। उसके पिताजी ने जब उसकी शादी अन्यत्र तय कर दी तब उसने बताया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उसके पिता ने एक तरह से जबर्दस्ती ही उसकी शादी कर दी। छी. छी:, कैसा घृणित काण्ड हुआ यह ! वह तो समीर बहुत ही भला लड़का है, वरना.... '

'तो क्या तुम सोचती हो कि तुम्हारा भी वही हाल.... ! हुं देखना, जान नहीं लड़ा दूं तो अपनी।'

अचानक दीपंकर ने आवाज दबाकर कहा, 'ऐ, एक काम करेगी ? हमारे घर चलेगी ?'

'वाह ! तुम्हारे पिता, भाई.... '

'गोली मारो बाप और भाइयों को ! उनसे हमें क्या करना है ?'

'ना बाबा, इन सब झंझटों में पड़ने की जरूरत नहीं। धत् तेरी, अभी से यह सब नहीं करते तो ही अच्छा रहता। तुम्हीं तो बेकार इतने उतावले हो रहे थे....।'

'क्यों, तुम्हें परेशानी हो गई है क्या ? तो ठीक है, अगर तुम्हारे पिताजी कहें तो.... '

'धत् । मैं यह थोड़े ही कह रही हूं । तुममें तो इतना बचपना है कि''''।
तो, पहुंच गये । टैक्सी यहां रोकोगे ?'
दीपंकर सहम गया । 'तु'''' तुम, बल्कि मैं ही पहले उतर जाता हूं । तुम
टैक्सी घर तक ले जाओ ।'

शमिता ने धीरे-से दीपंकर का हाथ दबाया तथा इशारे से ड्राइवर के सामने
अलग-अलग उतरने की बात कहने को मना किया । मानो इतनी देर से टैक्सी-
ड्राइवर के कान बन्द ही थे । कम-से-कम शमिता का तो यही ख्याल था
शायद !

□

बड़ी मुश्किल से बस की पट्टी पर पांव रख पाया । ओह ! बहुत भीड़ है ।
सुबह से तो टप-टप बरसात हो रही है । ट्राम और सरकारी बसें तो मानो
नजाकत के मारे मरी जाती हैं । पानी शरीर से छूते ही वे नाराज हो जाती
है । एकमात्र भरोसा है पब्लिक बस का । उन्होंने भी मौका देखकर मांग
की है, भाड़ा बढ़ाओ !

भीतर से किसी का खिजलाहट-भरा स्वर सुनाई पड़ा, 'बैठे बस में लिखकर
रखेंगे पैंतीस व्यक्तियों के बैठने की जगह, तो फिर कितने लोग खड़े रहेंगे और
कितने रॉड पकड़कर झूलते रहेंगे यह भी तो लिख सकते थे । बैठे बसें तो
निकालेंगे कम और उनमें ठूंस लेंगे इतने लोगों को मानो ट्रंक में कपड़े ठूंस
लिये हों ।' और भी पता नहीं वह व्यक्ति क्या-क्या बड़बड़ा रहा था ।

'ओ भाई, ओ चश्मेवाले भाई, मुझे एकदम से ही आउट किये दे रहे हो !
जरा देख कर, भाई ।'

'क्या करूं भई, आप ही बताइये । मुझे भी तो पोजीशन लेनी पड़ेगी न !'

'साली बरसात भी जान खाये जा रही है । तंग कर डाला ।'

'अरे दादा, धक्का क्यों दे रहे हैं ? देखते नहीं, लेडीज बैठी हैं ?'

'जरा-सा हाथ छूने में अगर धक्का लगता है तो आपको टैक्सी में ही जाना
चाहिये, जनाब । फिर हाथ तो क्या साया तक नहीं छूयेगा ।'

भीतर से किसी ने आवाज कसी, 'यह तो पुरानी बात हो गई बड़े दा, कुछ
नया शगूफा छोड़िये ।'

'टैक्सी मे जाने की तो आपने सलाह दे दी, पर उसका भाड़ा कौन देगा, बेटा ?' सामने बैठे एक वृद्ध सज्जन भी आज-कल के चंचल छोकरों जैसा बनने की कोशिश कर रहे थे।

'वाह, क्या बात कही है, दादू (दादा), शाबास !' वृद्ध को उत्साह दिलाया एक छोकरे ने।

'अरे भई, क्या कर रहे हैं ? भीगा छाता शरीर पर ही लादे दे रहे हैं ! कर दिया कमीज का सत्यानाश !' वह व्यक्ति अत्यन्त क्रोध के साथ धूल झाड़ने की तरह कमीज पर से पानी झाड़ने लगा।

◘

ऑफिस जाकर देखता हूं कि कोई भी काम नहीं कर रहा है। सभी कर्मचारी दलों में बंटकर गप-शप कर रहे हैं। क्या बात है ? तभी सुमत्र पास आया, 'आपने सुना, विकाश को पुलिस पकड़कर ले गई है ? परसों सुबह उसके मौहल्ले मे एक्शन हुआ था। अरे, वह तो उस वक्त मौहल्ले में था ही नहीं। पुलिसवालों ने उसे आइडेन्टिटी कार्ड दिखाने तक का अवसर नहीं दिया। विकाश ने शायद ऑफिस मे फोन करना चाहा था तो जानते हो, पट्ठों ने क्या कहा, 'हमसे ज्यादा होशियारी न बरतो ?' क्या अन्याय है ! है न ? हमने भी तय कर लिया है कि घेराव करेंगे।'

'घेराव ? हठात् घेराव किसका करेंगे ?'

'ऑफिसरों का। थाने में फोन करके विकाश को छुड़वाने के लिए। क्या कर्मचारियों के प्रति उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है ?'

बात सुनकर शान्ता ने होंठ बिचकाये। 'क्यों, ऑफिसर का घेराव क्यों ? क्या उनके हुक्म से विकाश को पकड़ा गया है जो वे 'सफर' करेंगे ?'

लड़कियां इस बात के लिये बदनाम हैं कि उनमें किसी के प्रति भी किसी प्रकार की फीलिंग्स नहीं होती। लगा कि यह बात झूठ नहीं है।

देवाशिष तो मुझसे बराबर ही कहता है, 'तुमलोग चाहे बी. ए., एम. ए. पास कर लो और चाहे ऑफिसों मे नौकरी कर लो, लेकिन अभी भी पड़ी हो उसी प्रिमिटिव युग मे ही। चांद पर मनुष्य के कदम पड़ चुके हैं, देश मे कैसी-कैसी उथल-पुथल हो रही है, लेकिन तुमलोगों की विचारधारा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।' देवाशिष ठीक ही कहता है।

जयन्त दा की पत्नी ने कुछ दिन ऑफिस से छुट्टी ली थी। वे पति-पत्नी दोनों ही हमारे ऑफिस में काम करते हैं। पत्नी की अनुपस्थिति के दिनों में जयन्त दा ने बहुत ही रसिक हो-होकर बातें की थीं। बस, शान्ता दी ने जयन्त के घर जाकर उसकी पत्नी को कितने ही उपदेश दे डाले और पति की तरफ से उसे सतर्क कर आई। बाद में हमने यह खबर सुनी तो चकित रह गये।

ऑफिस में चन्द्रा कुछ लजायी-लजायी-सी रहती है। अधिक बातें करना नहीं चाहती। लेकिन फिर भी उसको रिहाई नहीं मिलती है। जैसे, 'हां री, तुम्हारी शादी को कितने दिन हो गये ? हाय राम, पांच साल हो गये ? अभी तक बच्चे क्यों नहीं हुए ? तो फिर, तुम्हारा पति किसकी नौकरी करता फिरता है ?' आदि-आदि।

चन्द्रा को इन सब बातों से बहुत शर्म आती है। इस तरह की आलोचना उसे पसन्द भी नहीं है। फिर भी सभी उसे छेड़ती हैं। कम उम्रवाली लड़कियों में तो अधिकतर यही सब बातें चलती रहती हैं, या फिर 'लैटेस्ट डिजाइन' के बारे में बतियाती रहती हैं। पुरुष जब कहीं बैठकर क्रिकेट या फुटबॉल मैच की बातें कर रहे होते हैं तब ये लड़कियां बिना प्रयोजन ही वहां पहुंच जाती हैं और बात-चीत में शरीक होने की कोशिश करती हैं, कहती हैं, 'जयन्तीलाल थोड़ी देर और विकेट पर रह जाता तो मजा आ जाता। सरदेसाई तो बस फालतू ही है। एक रन बनाकर ही कूपर के हाथ में कैच दे दिया। हां, वेदी और वाडेकर कुछ अच्छा खेले हैं। फिर भी एक सौ पैंतालीस रन में ही इनिंग्स खत्म; यह भी कोई मतलब हुआ ?' इसी तरह के दो-चार मुखस्थ किये नाम या अखबार में पढ़ी रिपोर्ट से, या घर में बड़े भाइयों के मुंह से सुनी बातों की पुनरावृत्ति करके स्वयं को बहुत ही जानकार-होशियार दिखाती हैं पुरुषों के सामने; मानो खेल के बारे में बहुत समझती हों। सिर्फ खेल ही क्यों, सभी विषयों के बारे में जानकारी प्रकट करना ही आज की स्टाइल है। मर्द लोग उनके ज्ञान की परिधि नाप नहीं सकते, यह बात नहीं है। वे लोग तो सिर्फ उनकी कम्पनी के लोभवश ही उनकी मूर्खतापूर्ण बकवास को भी महत्वपूर्ण बातों की तरह मनोयोग से पास बैठे सुनते हैं। इस सातवें दशक की लड़कियों का विप्लव सिर्फ बातों एवं पोशाक में ही है, काम में नहीं। साड़ी उतरती-उतरती नाभि के नीचे तक पहुंच गई है। उसके अलावा कुर्ता, बेलबॉटम, लुंगी,

जीन्स । नये-नये फैशन आते हैं और चले जाते हैं ।

8

पूरे ऑफिस में खबर फैलने में देर नहीं लगी कि सुव्रत का डिमोशन हुआ है । सभी ने कहा, यह अवश्य ही अनन्त की कारसाजी है । एकाउन्ट्स सेक्शन से उसको डिस्पैच में कर दिया गया है । मुझे एक दिन की बात याद आ जाती है । किसी बात को लेकर बड़े साहब ने सुव्रत को बुलाकर डाटा था । डाट बिना कारण ही पड़ गई थी क्योंकि गलती जिसकी थी वह बड़े साहब की आंख का तारा था । उसको बचाने के लिए मुखर्जी साहब यानी बड़े साहब ने सुव्रत को लोगों के सामने अपराधी ठहराया था ।

सब कुछ जानते-बूझते हुए भी सुव्रत ने उनके सामने कुछ नहीं कहा । किसी प्रकार का प्रतिवाद तक नहीं किया । बस फट पड़ा हमलोगों के पास पहुंचकर । वह अपने भीतर की ज्वाला को, आग को, बुझाना चाहता था अपने सहकर्मियों के समक्ष बड़े साहब को······ । इन मजेदार बातों को सभी सहकर्मी रस ले-लेकर सुनने लगे । वे सुव्रत को और अधिक भड़काने की कोशिश भी करते जा रहे थे ।

मुझे यह बात बहुत बुरी लगी । मैंने सोचा, क्या सुव्रत बिल्कुल ही मूर्ख है ? वह क्या इतना भी नहीं समझता कि जिनके सामने वह मन की भड़ास निकाल रहा है उनमें से कोई भी उसका मित्र नहीं है । वह तो खुद रोज देखता है तथा जानता है कि कोई किसी की भलाई फूटी आंखों नहीं देख सकता । अपने सहकर्मी की अनुपस्थिति में उसकी बुराई करते हैं, किसी की नौकरी को किस प्रकार नुकसान पहुंचाया जा सकता है इसका उपाय सोचते रहते हैं, और सामने पड़ते ही कैसे बत्तीसी निकालकर हंसते हैं, मित्रता का ढोंग रचाते हैं !

अभी सुव्रत का भाषण जारी ही था कि इसी बीच अनन्त मित्र आकर अपनी टेबिल के सामने बैठ गया । सुव्रत फिर भी चुप नहीं हुआ, बल्कि उसका गुस्सा और अधिक बढ़ गया । अनन्त मित्र के सामने बड़े साहब के विषय में कुछ कहना हितकर नहीं है, यह जानते हुए भी सुव्रत चुप नहीं रहा । लेकिन आश्चर्य तो इस बात का है कि इतनी देर से जो लोग बड़े साहब का महा-श्राद्ध करने में सुव्रत के लिए माल-मसाला जुटा रहे थे वे तत्काल हवा हो गये ।

इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह कि वे अब अनन्त मित्र की टेबिल के सामने भीड़ लगाकर खड़े हो गये। उनमें से एक ने फुर्ती से सिगरेट का पैकेट खोलकर अनन्त मित्र के सामने बढ़ा दिया। अनन्त मित्र को सिगरेट जलाने का कष्ट तक नहीं करना पड़ा। एक और ने लाइटर जलाकर आगे बढ़ाया। फिर राजेन ने कहा, 'अनन्त दा, उस दिन रेडियो में आपकी बेटी का गाना सुना था। वाह, क्या खूब गाया था! क्या गला पाया है!' उसकी बात खत्म होते-न-होते कमल ने बड़े अपनत्व से पूछा, 'इस बार पूजा पर तुम बाहर नहीं जा रहे हो, अनन्त दा?'

'भाभी कैसी हैं, अनन्त दा? कहे देते हैं, भाभी के हाथ के बने मांस के समोसे एक बार और खिलाने पड़ेंगे।' उन सब के बीच में से सुमिता भी चहक उठी।

ओफ्फ! असह्य है यह ढोंग! मेरा मन हुआ कि चिल्लाकर उन सबसे कहूं, 'आप सब चिड़ियाघर में वास करिये जाकर। आपलोगों में मनुष्यत्व नहीं, मानवीयता नहीं। जब सिर्फ दो टाइम खाना जुटाने की ही प्रॉब्लम है आप सभी को, तो फिर वहां जाकर रहने में ही क्या आपत्ति है? भोजन तो, सुना है, वहां दोनों वक्त ही देते हैं।'

पब्लिसिटी डिपार्टमेंट के बूढ़े क्लर्क बाबू ने कहा था, 'हूं! हमलोग राजनीति के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। सभाओं में भाषण देते हैं। अन्य देशों के दुःख को देखकर विचलित हो उठते हैं। उस पार के बांगला देश की मुक्ति के लिये जुलूस निकालते हैं। अविचार तथा अन्याय के प्रतिकार का बहाना बनाकर ऑफिसों में काम बन्द करते हैं। स्कूल, कॉलेजों में पढ़ाई नहीं होने देते। हड़ताल करवाते हैं।..........और ऑफिस में इतने दिनों तक जिसके साथ बैठकर काम किया है उसके साथ अन्याय होते देखकर कुछ भी नहीं कह सकते? डर लगता है, क्या पता, कहीं अपनी ही नौकरी न चली जाय? अगर हम पर बड़े साहब असंतुष्ट हो गये तो? नौकरी को बचाये रखने के लिए सिर्फ बड़े साहब को ही खुश नहीं रखना पड़ता बल्कि उनके चमचे पर भी पालिश करनी पड़ती है। बेशर्मों की तरह खुशामद करनी पड़ती है।' पब्लिसिटी डिपार्टमेन्ट के क्लर्क बाबू की बात सुनकर मैं सिर झुका लेती हूं। उनको क्या कहूं, मेरी भी तो हिम्मत नहीं हुई। मेरी समस्त अन्तरात्मा चीख रही थी, तब भी तो मैं उस विद्रोह को भाषा देकर उसे उच्च स्वर में प्रकट नहीं कर सकी। दरअसल हम मर चुके हैं। मर रहे हैं। अपनत्व, ममता,

मित्रता आदि अनुभूतियों को महसूस करने की शक्ति हम खो बैठे हैं। जिस तरह पराधीनता के जमाने में एक वर्ग ऐसा था जो बड़े-बड़े खिताब पाने के लिये, नौकरी बहाल रखने के लिये बेशर्मों की तरह राजशक्ति की खुशामद किया करता था तथा अपने देश के लोगों के प्रति उदासीनता दिखाता था, आज भी बिल्कुल वही स्थिति है। दृश्य परिवर्तन हुआ है, लेकिन पात्र नहीं बदले हैं।

दिन-ब-दिन हम कैसे भावना-शून्य हुए जा रहे हैं। शुभ भावों को खो बैठे हैं। कौन तथा किसलिए आकर पड़ोसी का खून कर जाते है यह जाने बिना हम यथाशीघ्र दरवाजा वन्द कर निर्लिप्त हो जाते हैं। हाई-जम्प लगा-लगाकर चीजों के दाम बढ़े जा रहे हैं, लेकिन हम निर्विकार हैं। सड़क पर चलती-चलती बस सी० एम० डी० या कार्पोरेशन या और किसी द्वारा बनाये गढ़े में गिरकर भीतर के लोगों के बारह बजा देती है, फिर भी हमें होश नहीं आता। घन्टों बस-स्टैन्डों पर खड़े-खड़े बस आने के पल गिनते हैं और स्टेट ट्रांसपोर्ट हमारी इस पीड़ा की रत्ती भर परवाह नहीं करती, फिर भी हम धैर्य धारण किये रहते हैं। मौहल्ले में बम-बाजी होती है, लूट-पाट होती है, जिन्दा रहने के लिये चन्दा देना पड़ता है। वे लोग कहते हैं, 'सचमुच, यह तो बहुत बड़ा अन्याय है, बहुत खराब बात है, यह सब नहीं चल सकता। सरकारी दफ्तरों को पूर्णतया सुधारना होगा। इस सबकी जाच के लिये कमीशन बैठाना पड़ेगा।' और हम 'ही-ही' हसकर कहते हैं, 'तथास्तु'। और हालत ? यथा पूर्व, यथा परं। सच, इस धरती पर आज यह एक अद्भुत अंधकार घिर आया है।

इसको अद्भुत अंधकार के अलावा और क्या कह सकते हैं ? अगर यह सच नहीं होता तो उस दिन धर्मतल्ला पर पांच-छः लड़के उन लड़कियों को....।

मैं बस के इन्तजार में खड़ी थी। मेरी तरह और भी बहुत-से लोग खड़े थे। इनमें कई लड़के भी थे। उम्र उन सभी की तीस से नीचे ही होगी। टिपटॉप टाइप पेन्ट तथा कान के खूब नीचे तक लम्बी-लम्बी कनौतिया।

वे सब खड़े-खड़े सिगरेट पी रहे थे। आकाश की ओर मुंह करके धुंए के छल्ले छोड़ रहे थे, और उनकी बातचीत का विषय था लड़किया। उनमें से एक बोला, 'अरे, तूने देखा, आज-कल एक तरह की छोटी साइज की लड़कियां निकली हैं ? लगता है, सभी छोकरियों ने स्कूल-वूल में पढ़ना छोड़ दिया है।

नमें से एक भी हाथ लग जाय तो कसम से, मजा आ जाय ! गु

है, ये सभी अभी अनछुई ही हैं।....'

, जरा पास जा न, तेरी गुरुआनी हैं।'

देख....देख ! आ—ह: ! टॉप ! टॉप माल है, कसम से ! आ—ह: !

ाव नहीं। दिल पर ठोकर लगी है, कसम से !'

ने देखा, लुंगी पहने कई लड़कियां हमारी तरफ आ रही हैं। गोरी, चुलबुली

या खूबसूरत लड़कियां।

'क्या फैशन है, यार ! दिल पर कटारी चला रही हैं। गुरु, कहां से ले आये ?'

उसके बाद एक बेहद गंदा फिकरा कसा उनमें से एक लड़के ने। तब तक लड़कियां पास आ गयी थीं। बात उनके कानों में भी पड़ी, लेकिन आश्चर्य की बात कि वे पीछे मुड़कर हौले-से मुस्करा दीं। इसका मतलब, उस फिकरे को उन्होंने एप्रीशियेट किया। उन्हें शर्म नहीं आई। अपमानित महसूस नहीं किया। एक छोकरे ने कहा, 'लाइन की ही है, रे !'

◘

सुबह रतन ने आकर अपने काका को बताया, 'कल क्या कांड हुआ, पता है ? कल रात पुलक की क्या दुर्दशा की है ! अरे, सब मौहल्ले के ही लड़के थे। कई दिनों से उनके घर सब ताश खेलने जाते रहे हैं। उन्होंने कल रात अचानक ही पुलक को घेर लिया और कहा, 'जेब में जितना माल-पानी है, सब निकालिये तो जरा।' शायद पुलक ने उनमें से एक को पहचानकर कहा था, 'तुम अविनाश के बेटे गौतम हो न ? छी: छी:, तुम भले घर के लड़के होकर भी....' बस, फिर क्या था, गौतम बोला, 'ज्यादा टर्र–टर्र मत करिये, जनाब ये नक्शे किसी और को दिखाइयेगा। हुंह.... ! भल्ले घर के....! खूब बढ़ि सरकारी नौकरी करके मौज मार रहे हैं, और हमें ज्ञान सिखा रहे हैं ! जल से माल बाहर करो वरना लाश ही पड़ी नजर आयेगी।'

मैं कमरे में बैठा सब सुन रहा था। लेकिन आश्चर्य ! इस बात की मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैंने तो उठकर रेडियो को और तेज दिया तथा विज्ञापनयुक्त हिन्दी फिल्मी-गानों का कार्यक्रम सुनने लगा।

बस में लोग ठसाठस भरे हुए हैं। सभी निर्विकार भाव से एक-दूसरे के पांवों को जूतों-चप्पलों से कुचल रहे हैं। कोहनी से धक्का मारते हैं। 'ग्राह! ऊह! क्या कर रहे हैं? जरा सीधे होकर खड़े होइये न। ग्राह, कुचल डाला रे पैर!' गेट के पास से किसी ने चिचियाकर वाक्य फेंका, 'क्या बात है जनाब? ग्रन्दर बढ़िये न! रास्ता रोककर क्यों खड़े हैं? ग्रौर लोग नहीं चढ़ेंगे क्या?' गेट पर खड़े व्यक्ति ने उसकी तरफ उपेक्षा से देखा, पर खिसका नहीं।

'सब-के-सब ग्रावारा नक्सली हैं। सही बात कहो तब भी कोई कुछ सुनता ही नहीं....'

बस चल पड़ी। ग्रचानक ही गेट रोककर खड़े लड़के ने ग्रागे बढ़कर, बड़बड़ करनेवाले भले ग्रादमी का कमीज छाती के पास से मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया। बोला, 'क्यों दादा, क्या बड़बड़ा रहे थे तब? एक बार फिर से बोलो, तो जरा तुम्हें सीधा कर दूं।'

वह सज्जन लड़के के हाथ से ग्रपना कमीज छुड़ाकर मानो कुछ कहने जा रहे थे, कि तभी लड़का फिर बोल उठा, 'शाम को तो ग्रपनी पोती के उम्र की लौंडिया को लेकर मौज उड़ाग्रोगे ग्रौर ग्रब बस में चढ़कर शराफत की दुम बनते हो!'

ग्रौर उस सज्जन की कनपटी पर एक जोरदार घूंसा पड़ा। ग्रगल-बगल खड़े लोग खिसककर खड़े हो गये। ग्रब तक जो लोग लड़कियों की सीट से सटकर खड़े थे ग्रौर वहां से तिल भर भी हिलने को तैयार नहीं थे, वे पलक झपकते ही खिसककर ग्रागे की ग्रोर चले गये। सभी चुप थे। कोई कुछ भी बात नहीं कर रहा था। ग्रॉफिस में जो लोग ग्रपने ग्रधीनस्थ कर्मचारियों पर रौब झाड़कर, डाटकर, ग्रपनी पोजीशन ठीक रखने की कोशिश करते हैं, इस वक्त वे भी बिल्कुल निरीह बने एक तरफ खामोश खड़े थे।

बहुत-से तो ग्रपना-ग्रपना स्टॉपेज ग्राने से पहले ही उतर पड़े। मेरा समस्त ग्रस्तित्व विरोध करने की तीव्र इच्छा से ग्रस्थिर हो उठा, लेकिन साथ-साथ भय भी लगा।

ग्रब हमारा सहारा सिर्फ भय हो रह गया है। मन में तीव्र क्रोध, ग्रसह्य जलन लेकर भी सिर्फ डर से चुप रहते हैं हमलोग। हमारे इस डरपोक ग्रस्तित्व को पहचानकर एक दल हमारा ग्रपमान करता है, हमें हेय समझता है।

दुकान पर पहुंचकर किसी वस्तु की अविश्वसनीय रूप से अधिक कीमत देखकर जब मैं कहती हूं, 'वाह, अभी उसी दिन तो आपके बगलवाली दुकान से बहुत कम में ले गयी थी।'

तो दुकानदार मौन साधे ही मेरे हाथ से वह वस्तु लेकर रख देता है और मेरी पूर्णतः उपेक्षा कर दूसरे ग्राहक से बात करने लगता है। मैं अपमान को चुपचाप हजम कर वहां से चली आती हूं।

सुबह से ही पानी बरस रहा है। ऑफिस की छुट्टी हुई उस वक्त सड़क पर घुटनों तक पानी भरा हुआ था। टैक्सियां खाली होते हुए भी आवाज को अनसुनी कर आगे बढ़ जाती हैं। आखिर एक रुकी भी तो ड्राइवर ने महाराजा की तरह रौबदार स्वर में पूछा, 'किस तरफ जायेंगी आप? लेकिन नॉर्थ में नहीं जाऊंगा मैं।' मैं बात का जवाब दिये बिना चुपचाप टैक्सी में जा बैठी। उसके बाद आवाज में तेजी लाकर डांटने के अन्दाज में कहा, 'पहले से ही इतनी जिरह क्यों करते हैं आप? कहां जाना है, कहां नहीं, यह टैक्सी में बैठने के बाद पूछना चाहिए।'

'आप गरम क्यों हो रही हैं? मैं नॉर्थ में नहीं जाऊंगा, यही तो कह रहा हूं।'

'मैं भी तो सुनूं कि क्यों नहीं जायेंगे? पैसेंजर क्या आप जहां ले जाना चाहेंगे वहां जायेंगे?'

ड्राइवर ने क्षण भर मेरी ओर जलती निगाहों से देखकर कहा, 'आप उतर जाइये। मेरी गाड़ी खराब है; नहीं जायेगी।'

मेरे तन-बदन में आग लग गई लेकिन अगले ही क्षण एक अनजाने भय-वश मेरा हृदय कांप उठा और मैं टैक्सी का गेट खोलकर बाहर निकल आयी। टैक्सी पल भर में ही अदृश्य हो गई।

मन में इतना विक्षोभ, असहनीय ज्वाला तथा पीड़ा लेकर पता नहीं हम क्या ढूंढ़ रहे हैं? शायद एक सीढ़ी ढूंढ़ते हैं—ऊपर उठने की सीढ़ी जो हमें किसी प्रकार भी नहीं मिल रही है। और नहीं मिल रही है इसीलिये हम विक्षुब्ध हो रहे हैं। सब कुछ तोड़-फोड़कर चूर-चूर कर देना चाहते हैं। दरअसल, हमारे सफल बनने में बाधक कौन है, यही हम नहीं समझ पा रहे हैं। इसीलिये हम गुमराह हो गये हैं। सब कुछ खो बैठे हैं।

रतन जेठू कहते हैं, 'यह सब फ्रस्ट्रेशन के सिवाय कुछ नहीं है। अपनी इच्छित वस्तु नहीं पाने के कारण ही यह सब असन्तोष है। अगर मनुष्य सुख से स्वच्छन्द रह सके तो फिर उसे और क्या चाहिये ?·····'

यह सब बेकार की बातें हैं। मैं ऐसा नहीं मानता। विश्वास नहीं करता। अगर यही बात होती, तो फिर अमल सुदीप्ता के साथ इस तरह·····अमल तो बड़े बाप का बेटा है। पढ़ा-लिखा है। ऑफिस में अच्छी नौकरी करता है। फिर भी सुमथ से उस दिन पूछ रहा था, 'तेरे जान-पहचान की कोई अच्छी-सी लड़की-वड़की है क्या ? हो तो यार हमारे लिये भी दो न किसी एक को ! शाम का वक्त काटे नहीं कटता।'

'कैसी बात करते हो, यार ? सुदीप्ता के होते तुम्हारा समय नहीं कटता ? वह कहां गई ?'

'गोली मारो सुदीप्ता को। पिण्ड छुड़ा लिया है मैंने तो उससे।'

'तो तू उससे शादी नहीं करेगा ? तुम लोगों में तो प्यार·····?'

'देख गुरु, यह प्यार-व्यार सब बेकार की बातें हैं। थैंक-डेटेड। समझे ?'

◘

सारी बातें देवाशिष से कहीं मैंने। पहले तो वह अन्यमनस्क-सा हो गया। एक अलग स्पर्श देकर उस महा झूठ को मेरे मन से हटा देने के लिये उसकी आंखों की पुतलियों में एक तृष्णा जाग उठी, पर उसने खुद पर काबू कर लिया। अपनी इस कामना का रुख उसने शुभ और सुन्दर की ओर मोड़ दिया। पूरे आत्म-विश्वास से वह बोला, 'प्रेम, श्रद्धा, चाहत किसी जमाने की सीमा में बंधकर नहीं रहते। कितने ही युग, कितने ही जीवन, कितने ही जन्मों को स्पर्श कर-करके प्रेम विराट् होता है। चन्दन के प्रलेप की तरह प्यार समूची जलन को शीतल कर देता है। प्यार बरसात की बूंद की तरह पवित्र है। एक अन्य प्रकार की विशुद्ध भावना है। एक अनिर्वचनीय आनन्द है।'

देवाशिष ने विभोर होकर मुझे अपने निकट खींच लिया। मैं ढलती शाम की गेरुई आभा को निहार रही थी। विक्टोरिया मेमोरियल की हरियाली जमीन पर ढलती शाम की ओर देख रही थी। मेरे होंठों पर मुस्कराहट खेल गई।

देवाशिष इशारा समझ गया। उसने खुद को अलग कर लिया, तथा आवाज

में गंभीरता भरते हुए बोला, 'अपराजिता, क्या तुम नहीं जानती कि प्रेम को बहुत तपा-तपाकर, गहरी ममता से सींच-सींचकर, हृदयरूपी घर में उसका यत्नपूर्वक लालन-पालन करना पड़ता है ?'

'जानती हूं। और जानती हूं इसीलिये तो मैं गुमराह नहीं हुई हूं। मैं भटके हुए राही की तरह पथ नहीं ढूंढ़ती हूं। कदम-कदम गंतव्य की ओर बढ़ती जा रही हूं तथा बढ़ती जाऊंगी।

'मेरा यह विश्वास है कि एक दिन ऐसा ही एक घर हम जरूर ढूंढ़ लेंगे जिसकी खुली खिड़की से उन्मुक्त प्रकाश भीतर आयेगा; और हमारे मन को, हमारी देह को आलोकित करेगा। तब मैं देवाशिप में खुद को विलीन करके कभी न खत्म होनेवाला सुख पाऊंगी। जीवन की अंतिम सांस तक हम लोग निर्मल, पवित्र ज्योत्स्ना-रश्मि की तरह विहंसते रहेंगे। रात-दिन के इस बोझ को हटाकर हम किसी-न-किसी दिन वैसा ही घर जरूर ढूंढ़ लेंगे। हमारे प्यार का यह शुभ फल हमें जरूर मिलेगा।'

देवाशिप के समूचे चेहरे पर मुग्धता की मधुर किरण फैल गई। मेरे हाथ को उसने कसकर पकड़ लिया। मेरी आंखों से अपनी आंखें हटाकर उसने अपने चंचल होते मन पर काबू किया।

मुझे बहुत अच्छा लगा। जीवन में ऐसी बहुत-सी आकांक्षाएं है जो हाथ पसार कर मांगी नहीं जा सकतीं। सिर्फ अनुभव से प्राप्त की जाती हैं। यह बात देवाशिप जानता है।

जाड़े की शाम ने बहुत जल्दी ही आस-पास के लोगों को छाया का रूप दे दिया। हम उठ खड़े हुए। दूर-दूर बत्तियां जल रही थीं। धीरे-धीरे नर्म घास पर कदम बढ़ाते हुए हम प्रकाश की ओर बढ़ गये।

■ ■ ■

शहीद की मां

समरेश वसु

• • •

मानो शरीर में कंपकंपी की लहर उठी है। विमला ने आंखें मूद लीं। विमला ने स्पष्ट महसूस किया जैसे उसके पेट के भीतर कुछ हिल-डुल रहा है। उसने आंख मूदकर, एक होंठ को दूसरे होंठ से कसकर दबा लिया और पेट में हिलते-डुलते अहसास को पूर्णतया महसूस करना चाहा। उसके सामने चूल्हे पर सब्जी रखी हुई है। सब्जी में पानी नहीं है अतः चड़-चड़ की आवाज होने लगी है। शायद थोडी देर न सम्हाले तो कडाही में चिपककर सारी सब्जी जल जायेगी। लेकिन फिर भी विमला हिलने में असमर्थ है। अपनी समस्त अनुभूति बटोरकर उसने कानों में सीमित कर ली और अपने गर्भ की आवाज सुनने की कोशिश करने लगी। उसे महसूस हुआ मानो उसके दिल की धड़कन में निःशब्द ही बादल का नाम गूंजने लगा है, 'बादल, बादल, तू ही है न!'.... दूसरे ही क्षण उसका शरीर एक बार और कांप उठा। वह जोर-जोर से सांस लेने लगी। फिर आंखें खोल, चूल्हे पर सब्जी की कड़ाही की

ओर देखकर वह वहां से उठ खड़ी हुई। उसकी आंखों में वहुत ही व्याकुलता भरा भाव तैर रहा था। कानों को और अधिक सतर्क बना वह बाहर की आहट लेने लगी। उसके बाद दरवाजे की ओर कदम बढ़ाने ही वाली थी कि वहीं ठिठक गई। सब्जी योंही छोड़ गई तो एकदम जल जायेगी। एक बार चूल्हे पर चढ़ी सब्जी की ओर देखा उसने, लेकिन खड़े रहने की ताकत नहीं थी उसमें। परेशान हो वह बाहर निकल आयी कि, होने दो, खराब होती है तो खराब होने दो। कच्ची रहे, जल जाये, या राख हो जाये, मुझसे अब नहीं सम्हाला जायेगा।

आकाश में गहरे वादल छाये हुए थे, जोरों की हवा चल रही थी। आंगन के कोने में लगा सफेद फूल का पेड़ हवा के तेज झोंकों से एकदम झुक गया था। एक साल के पौधे की भी अब झुका, तब झुका, वाली हालत हो रही थी। घर बिल्कुल सुनसान था। लकड़ी के फ्रेम में मंढी टिन की पत्तर से बनाई घर की दीवारें और टिन की ही छत थी घर की। ऐसा लग रहा था मानो घर में कोई भी नहीं है फिर भी विमला बहुत ही कदम दबा-दबाकर चलती हुई आंगन में आई। बगल के मकान में कना की मां किसी से कुछ कह रही थी। विमला ने नागफनी की बाड़ को पारकर एक बार उस तरफ देखा। यहां से कना की मां का घर तो दिखाई पड़ता है, लेकिन उसमें रहनेवाले नहीं दीखते। उसने एक बार फिर उस घर की ओर देखा पर उधर किसी की भी आहट नहीं मिली। हवा से उसके बाल उड़-उड़कर आंखों पर आ रहे थे। दूर से देखने पर बाल काले लगते थे लेकिन वस्तुतः सफेद होने शुरू हो गये थे। चौड़ी मांग में सिंदूर का बासी निशान था। हाथ में वदरंग शांखा एवं नोया (बंगाली महिलाओं की सुहाग-चिन्ह स्वरूप पहनी शंख एवं लोहे की चूड़ी) तथा सोने की कुछ चूड़ियां पहन रखी थीं उसने। लहंगे पर तांत की बुनी कत्थई बॉर्डरवाली सफेद साड़ी पहन रखी थी। साड़ी मैली हो रही थी। जगह-जगह हल्दी के धब्बे लगे हुए थे। इस प्रौढ़ अवस्था में भी शरीर का कसाव बरकरार था। चेहरे पर पड़ी रेखाओं से ही उम्र का अहसास होता है, फिर भी इस समय का चेहरा देखकर ही पता लग जाता है कि जवानी में खूबसूरत रही होगी। उसका चौड़ा शरीर कठोर एवं कसा हुआ है।

विमला कुछ पल आंगन में ही खड़ी रही। फिर सामने की ओर से न जाकर रसोईघर के पीछेवाले रास्ते से गई। नागफनी की बाड़ के सहारे-सहारे मकान

के पिछवाड़ेवाले रास्ते पर वह आगे बढ़ती ही गई। घर के पिछवाड़े के सभी घरों के खिड़की-दरवाजे बन्द थे। जिस जगह मकानों की सीमा खत्म होती है वहा कोने में एक जवा फूल का पौधा है। विमला वहीं खड़ी रह गई। सामने सड़क है जो उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बी चली गई है। कॉलोनी की सडक है अतः पक्की नहीं है। विमला ने उत्तर की ओर देखा। उत्तर की ओर का रास्ता जिस जगह से पश्चिम की ओर मुड़ता है उसी ओर देखा। उस जगह मोड़ के एक किनारे कुछ ईंटें अभी तक पडी हैं। वहा शहीद-वेदी बनी थी। इन कुछ महीनों में टूटते-टूटते सभी ईंटें बिखर गई हैं। अब तो वहां कुछ इनी-गिनी ईंटें ही बची हैं। इन्हें भी कोई उठाकर ले जायेगा तो शहीद-स्मारक का कोई भी निशान नहीं बचेगा। वेदी किसने तोडी और उसकी ईंटें कहा गईं, किसी को भी पता नहीं। विमला देखा करती थी कि, शुरू-शुरू में एक कुत्ता स्मारक से बिल्कुल सटकर सोया करता था। पर अब वह भी नहीं दीखता। गिनती की ईंटों के अलावा अब वहां कुछ भी नहीं है।

विमला ने गर्दन हिला दी, साथ ही उसके होठ भी बड़बडा उठे, 'नहीं, बादल नहीं है वहां।' बादल को श्मशान में ही जलाया गया था। तीन महीने के करीब हुए होंगे, जब यह स्मारक तैयार किया गया था तब वे लोग विमला को बुलाने आये थे। बादल की मां थी विमला। एक शहीद की मां। इसीलिये वे लोग बुलाने आये थे—बादल के मित्र, उसकी पार्टी के लड़के। पर वे लोग सिर्फ विमला को ही बुलाने आये थे। इस घर के और किसी भी सदस्य को नहीं बुलाया था उन्होंने। न तो बादल के पिता को और न उसके दोनों बड़े भाइयों को। बादल का पिता हरप्रसाद किसी दूसरी पार्टी का आदमी है। इसके अलावा, दोनों बड़े भाई कृपाल और दयाल भी अलग-अलग पार्टियों के मेम्बर हैं। घर के चार मर्द और चार पार्टियों के मेम्बर। अतः बादल की पार्टी के लोग सिर्फ विमला को ही बुलाने आये थे। शहीद की मां को।

विमला वहां गई थी। वहीं, बस जरा-सी ही दूर तो है घर से। पश्चिमी मोड़ पर, सड़क के किनारे, वहीं जहां अब सिर्फ कुछ ईंटें ही बची हैं। शहीद स्मारक की अंतिम निशानी। विमला वहा किसलिये गई थी, यह उसे पता नहीं है। बादल की पार्टी के लड़कों ने आकर कहा था, 'मौसी, आपको एक बार

वहां चलना पड़ेगा ।' विमला उदासी की प्रतिमूर्ति बनी वहां गई थी । उसके दो दिन पहले ही तो उसके अट्ठारह वर्ष के बेटे को किसी ने इसी जगह पीट पीटकर मार डाला था । वह दृश्य इस समय भी विमला की आंखों के सामने मानो स्पष्ट घूम रहा है । बादल लहू-लुहान था । मुंह, सिर एवं शरीर के विभिन्न अंगों पर खून बह-बहकर जम गया था । उसकी पार्टी के लड़के ही मृत बादल को उठाकर उसके घर के आंगन तक ले आये थे । बादल सबसे छोटा बेटा था, पर अंतिम संतान नहीं था । उसके बाद भी दो हुए थे पर जीवित नहीं रहे । अतः अब बादल के बाद की और कोई संतान नहीं है ।

बादल को इस हालत में देखकर विमला चीख मारकर उस पर गिर पड़ी थी तथा बादल को जकड़कर रोने लगी थी । वह रोती-रोती कहती जाती थी 'ऐसी बुरी मार किसने मारी रे तुझे ? अरे बादल रे, बादल बेटे !'····बाहर के लोगों से घर का आंगन खचाखच भर गया था उस वक्त । कुछ देर बाद वे लोग बादल की अर्थी फूल-मालाओं से सजाकर उसे ले गये थे । लेकिन श्मशान-यात्रा के दौरान 'हरि बोल' का उच्चारण न कर स्लोगन कहे थे' 'कामरेड बादल जिन्दाबाद ! खून का बदला खून !'···· उसके बाद तो विमला खुलकर रो भी नहीं सकी । बस, कारण-अकारण, समय-असमय आंखों से आंसू बहने लग जाते । तब वह अपने आंसुओं को पोंछ लेती ।

दो दिन बाद ही स्मारक तैयार किया गया । जिस दिन बादल का खून हुआ था उस दिन कॉलोनी के मैदान में एक सभा हुई थी । वह सभा बादल की पार्टी के लोगों की नहीं थी, किसी अन्य दल की सभा थी । गड़बड़ की शुरूआत उसी जगह से हुई थी, हालांकि बिल्कुल सही बात कोई भी नहीं बता पाया । शाम के धुंधलके में किसी ने बादल का पीछा किया था । बादल घर की ओर दौड़ पड़ा था, लेकिन मोड़ को पारकर आगे नहीं बढ़ सका । कोई कहता है, बादल अकेला ही घर की ओर आ रहा था और उसका खूनी पहले से ही मोड़ पर छिपा उसका इन्तजार कर रहा था । इसी तरह की जितने मुंह, उतनी बातें सुनने में आ रही थीं । विमला की समझ में नहीं आता कि उनमें से किस बात को सच माने तथा किसको झूठ । बादल की चीख सुनकर लोग दौड़कर उसके पास पहुंचे थे, पर तब तक सारा खेल समाप्त हो चुका था । खून से लथ-पथ मृत बादल के अलावा शाम के धुंधलके में और कोई भी वहां दिखाई नहीं पड़ा । पुलिस भी आई थी । शायद

बादल की पार्टी ने कुछ लोगों के नाम बताये थे पर वे ढूंढने पर भी कहीं नहीं मिले। पुलिस किसी को भी गिरफ्तार नहीं कर सकी। हत्यारों के रूप में जिनका नाम पुलिस को बताया गया था उन पर मामला दायर किया गया था। वे सभी जमानत पर छूटकर निश्चिंत घूम रहे हैं। केस चल रहा है। केस इस तरह चल रहा है मानो कुछ हुआ ही न हो।

बादल की हत्या के दो दिन बाद उसका स्मारक यानी शहीद-स्मारक तैयार हुआ था। इन दो दिनों में कुछ छोटे-मोटे दंगे भी हुए। एक दुकान को जलाकर राख कर दिया गया लेकिन क्यों, यह विमला को पता नहीं। विमला शहीद-स्मारक के पास क्यों गई थी यह भी उसे पता नहीं। वह तो वहां जाकर बस थोड़ी देर खड़ी रहकर आ गई थी। पन्द्रह-सोलह ईंटों को एक-के-ऊपर-एक रखकर, गारा-चूना लगाकर, गाथ दिया गया था। फिर चूने से उस पर सफेदी करके उस पर बादल का नाम लिखा गया था। उसके बाद विमला के चारों ओर खड़े होकर उन लड़कों ने वही एक ही स्लोगन बुलन्द किया था, 'कॉमरेड बादल जिन्दाबाद। खून का बदला खून.....' आदि-आदि। पता नहीं कौन था वह लड़का, उसने बादल का नाम ले-लेकर एक भाषण भी दिया था। उसकी कही सारी बातें विमला की समझ में नहीं आईं। समझ में क्या नहीं आई, पूरी बात मानो उसने सुनी ही नहीं। वह तो गहन दुःख में डूबी-सी खड़ी थी और उसी हालत में घर चली आई थी। घर आकर रसोईघर में जाकर खाना बनाने बैठ गई थी। घर में उस वक्त और कोई भी नहीं था। हरप्रसाद, कृपाल तथा दयाल आकर खाना खायेंगे, खाना बनाये बगैर काम कैसे चलेगा, अतः वह जिस दुःख की स्थिति में वहां ...ई थी उसी हालत में घर आकर खाना बनाने में जुट गई। पर किसी के ...ाथ भी उसने बात नहीं की। कृपाल और दयाल से तो नहीं ही की, हरप्रसाद से भी बात नहीं की। हरप्रसाद खुद आकर रसोईघर के दरवाजे के पास खड़ा रहा था। फिर खुद से ही बोल रहा हो इस तरह बोला था, 'कितनी बार मना किया था कि उस दल से मेल-जोल मत बढ़ा, पर कोई बात सुने तब न!'

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। फिर भी हरप्रसाद वहीं खड़े रहे। थोड़ी देर चुप खड़े रहने के पश्चात् एक लम्बी सांस लेते हुए बोले, 'यहां की ये सब पार्टियां सिवाय खून-खराबे के और कुछ भी नहीं जानतीं। इन्हें कोई

मतलब नहीं किसी से। जिसका गया, उसका गया। ये थोड़े ही देखने आयेंगे। अब बादल वापस तो आने से रहा।'

इसके बाद हरप्रसाद चुप रह गये थे। पर विमला ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया। वह तो चूल्हे की तरफ झुकी हुई बैठी थी। हरप्रसाद ने फिर एक गहरी सांस भरकर कहा, 'जो कुछ होना था सो हो गया। अब मन को मजबूत रखो। इसके अलावा और चारा ही क्या है, तुम्हीं बताओ ? मुझे देर हो गई, मैं ऑफिस जा रहा हूं। खाने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं है।'

हरप्रसाद चले गये थे। बस, उस दिन के बाद और कोई बात नहीं हुई। इन तीन महीनों में कभी-कभार कुछ कहते भी तो बस यही कि, 'मन को मजबूत कर; धीरज धर; बादल तो अब लौटकर आयेगा नहीं।'

विमला हरप्रसाद की बातों का कोई जवाब नहीं देती। वह पति से सिर्फ गृहस्थी-सम्बन्धी आवश्यकताओं की बात ही किया करती। बादल के विषय में कोई भी बात नहीं करती। कृपाल और दयाल ने तो अपनी ओर से ही विमला से बादल सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं की। कृपाल नौकरी करता है। दयाल बेकार है। वे दोनों अलग-अलग दल के आदमी हैं। घर में वे दोनों आपस में बहुत कम बातें किया करते। गमछा, तेल, साबुन आदि मांगने, नहाने आदि की बातें ही करते। इसके अलावा नाटक या सिनेमा तक की बात भी नहीं करते। अपने दल की बात तो बिल्कुल ही नहीं करते। विमला से तो भूख लगने पर सिर्फ खाना मांगते। इसके अलावा, घर में क्या सामान लाना है यह भी पूछ लेते, पर बादल के विषय में एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालते, मानो उनका भाई नहीं मरा, कोई और ही मरा है। मानो किसी दूसरी पार्टी का, जो उनकी नहीं थी, कोई सदस्य मर गया हो। शायद अपनी पार्टी के लोगों से इस बारे में बात करते हों, पर घर में तो किसी से भी कोई भी बात नहीं करता।

विमला जवाकुसुम के पेड़ से सटकर खड़ी, टूटी हुई वेदी की ओर देख रही थी। नहीं, बादल वहां नहीं है। बादल को श्मशान में जला दिया गया है। पर आज बादल विमला के सारे शरीर में जीवित है। आज श्रावण की उन्नीस तारीख है। ग्यारह बजे हैं। अट्ठारह साल पहले इसी दिन, इसी समय, बादल पृथ्वी पर आने के लिये विमला के पेट में छटपटा उठा था।

□

उस वक्त घर में और कोई नहीं था। विमला एकदम अकेली थी। पूर्ण-गर्भा विमला, बादल किसी भी क्षण पैदा हो सकता था। ठीक इसी समय दर्द उठने शुरू हुए थे। डॉक्टर, वैद्य की आवश्यकता तो थी नहीं। विमला बिल्कुल निःशंक थी। वह समझ गई थी कि यह दर्द निष्फल दर्द नहीं है। उसके शरीर की प्रत्येक अनुभूति में अभिज्ञता भरी थी। दर्द उठते ही वह समझ गई थी कि यह व्यथा, यह दर्द, निष्फल नहीं जायेगा। समय निकट था। अट्ठारह साल पहले इसी दिन, इसी समय, मूसलाधार बरसात हो रही थी। इस तरह अकेले रहना उचित नहीं था ऐसी हालत में। किसी तरह विमला बगल के मकान तक कन्ना की मां के पास गई थी। दर्द से कराहते हुए विमला ने चुप-चुप ही कन्ना की मां को स्थिति से अवगत कराया। बोली, 'दीदी, अब एकदम समय नहीं है।'

सुनते ही कन्ना की मां अपने घर का सारा काम छोड़ शीघ्रता से विमला के साथ चली आई थी। उस वक्त कन्ना छः-सात साल की थी। उसको भेजकर, मेघू की विधवा बुढ़िया मां को, जो जच्चगी करवाया करती थी, बुलवा लिया। आजकल की तरह ढोल-ढमाके नहीं पीटे जाते थे उन दिनों। मेघू की मां ही बच्चा जनवाया करती थी। बुढ़िया तुरन्त ही आ गई थी। उसने विमला की जांच की और बोली, 'हां, दर्द तो असली है। अब अधिक देर नहीं है।'

कन्ना की मां ने उसी वक्त रसोईघर खाली कर दिया। उसी रसोईघर में बादल पैदा हुआ था। उस वक्त इस घर की हालत कुछ और ही थी। टिन की दीवारें नहीं थीं, फर्श भी पक्का नहीं था। टट्टर की दीवारें थीं। हां, छत उस समय भी टिन की थी। फर्श कच्चा था। विमला रसोईघर में चटाई पर कभी लेटती, कभी बैठती, दर्द की तीव्रता को सहन कर रही थी। कन्ना की मां की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। वह इस तरह घबरा रही थी मानो उसी को दर्द उठ रहे हों। विमला दम साधे दर्द सहन कर रही थी। दांत-पर-दांत भींचकर मुंह को स्थिर रखने की कोशिश कर रही थी। दर्द सहन करते-करते सोच रही थी—लड़का होगा या लड़की। हरप्रसाद की इच्छा थी कि लड़की हो; विमला की भी यही इच्छा थी। दो लड़कों के बाद एक लड़की ही होनी चाहिये। पर उसकी अंतिम कराह के साथ जो भूमिष्ट हुआ वह लड़का था। मेघू की मां ने दोनों हाथों से विमला का पेट कसकर पकड़ रखा था क्योंकि अभी तक नाल नहीं गिरी थी। विमला एक बार फिर

उसी प्रकार के दर्द की अपेक्षा कर रही थी । उसी बीच उसने अपने शिशु की ओर भी एक नजर डाली थी । ताजा खून से लाल-लाल एक शिशु । उसके गले से तब तक रुलाई भी नहीं फूटी थी । बहुत धीमी कराह-सी ही निकल रही थी शिशु के गले से । पर ज्योंही नाल गिरी, शिशु सप्तम स्वर में चीख उठा, 'उवां, नवां, उवां !'

नाड़ी काटते-काटते मेघू की मां ने कहा था, 'बाप रे, कितना बड़ा छोरा है ! मानो पेट से ही एक साल का निकला है । देखकर लगता है, चेहरा मां पर गया है ।'

क्या कहा, मां पर गया है ? विमला ने फिर एक बार शिशु की ओर देखा । पर उसकी समझ में नहीं आया कि बच्चा किस पर गया है । मेघू की मां की गोद में बच्चे को देखते-देखते अचानक विमला को अपनी गोद बहुत खाली-खाली महसूस हुई । लड़की नहीं है तो क्या हुआ, अपने ही शरीर का एक हिस्सा है, गोद में लेने को तो जी ललकता ही है । पर यह बात मेघू की मां से नहीं कह सकी थी वह । मन-ही-मन बोली थी, 'मां पर गये बेटे, तुम हमेशा सुखी रहो ।'

बाहर मूसलाधार बरसात हो रही थी । कना की मां ने विमला को सहारा लगाकर बैठाया था । दूध गरम करके पिलाया था । मेघू की मां ने नवजात शिशु को गरम पानी से पोंछकर साफ किया और गुदड़ी में लपेटकर विमला की गोद में देकर कहा, 'समझ गयी, मूसलाधार पानी साथ लेकर आया है, बाप के इसी तरह धन बरसेगा । बाप रे, कैसा बादलिया लड़का है ! दुनिया डूब जानेवाली बरसात साथ लाया है ।'

रसोईघर की हालत बहुत अच्छी नहीं थी उस वक्त । अब तो पक्का आंगन है, पर उस समय कच्चा फर्श तथा टिन की छत थी जो जगह-जगह से टप-टप टपक रही थी । नवजात शिशु को छाती में छिपाये एक सूखा कोना देख वहां सो रही थी विमला ।

नवजात शिशु को परिचित कराने के लिए विमला ने अपना स्तन उसके मुंह से छुआ रखा था, तथा उसके मुंह की ओर देखते हुए सोच रही थी, पता नहीं, यह कैसा निकलेगा ? यही सब सोचते-सोचते उसने बालक को और भी करीब कर छाती से चिपका लिया । मेघू की मां ने कहा था, मां पर गया है,

अतः बहुत शैतान होगा यह बालक ! 'क्यों रे, शैतानी कर तू भी मेरा जो जलायेगा क्या ?'

इतना कह विमला हंस दी थी। फिर बोली थी, 'अगर शैतानी करेगा तो पीटूंगी।'

विमला के इतना कहते ही नवजात शिशु रो पड़ा था। विमला को हंसी आई थी। बोली, 'अभी थोड़े ही पीट रही हूं, अभी से क्यों रो रहा है ? बड़ा हो, कोई शैतानी कर, फिर देखूंगी तुझे।'

विमला को एक-एक बात याद है। कुछ भी नहीं भूली है वह, मानो कल की ही बात हो। कृपाल, दयाल के जन्म की भी एक-एक बात याद है विमला को। वे तो अपने देश में पद्मा के उस पार जन्मे थे। बादल इसी घर में जन्मा था।

शाम को जब हरप्रसाद घर लौटे थे, तो जच्चा-घर के बाहर ही खड़े होकर, खंखारकर, अपने आने की सूचना दी थी। दरवाजा भीतर से बन्द था। विमला ने मेघू की मां से कहा, 'कृपा के पिता आये हैं, दरवाजा खोल दे।' मेघू की मां ने दरवाजा खोल दिया था। हरप्रसाद ने विमला से पूछा, 'कैसी हो तुम ?'

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ लालटेन की रोशनी में बच्चे को आगे करके दिखा दिया था। हरप्रसाद ने 'हूं' की आवाज कर कहा था, 'तुम्हारा बेटा तो बहुत खूबसूरत दीखता है।'

बाप का खुशी से चमकता चेहरा देखकर ही समझा जा सकता था कि वे बहुत खुश हुए थे। विमला का चेहरा गर्व से दमक उठा था। उसने सोचा, 'इतना खूबसूरत बेटा पाकर हरप्रसाद को बेटी न होने का अफसोस नहीं है।'

मेघू की मा ने कहा था, 'बेटा जबर्दस्त बादल-पानी साथ लाया है। एकदम बादला लड़का है।' अतः नाम-संस्कार उसी समय कर दिया गया था।

○

आज वही दिन था। अट्ठारह साल पहले का वही दिन था आज। ग्यारह बज रहे थे। विमला आंख मूंदकर खामोश खड़ी, रह-रहकर सिहर उठती थी। उसे ऐसा लग रहा था मानो पेट में कुछ हिल-डुल रहा है। पेट में बादल है ? बादल ! एक कोने में जवाकुसुम से सटकर खड़ी है विमला। [illegible]

शहीद-स्मारक की ओर देखकर उसने आंखें मूंद लीं। हां-हां, फिर, फिर वैसा ही लग रहा है मानो पेट में भ्रूण हिल-डुल रहा है। होंठों को भींचकर, दोनों हाथ छाती के पास इकट्ठे कर लिये उसने। अब यह सब क्या हो रहा है? फिर ऐसा क्यों लग रहा है? संतान पैदा करने की शक्ति तो उसकी बहुत दिनों पहले लुप्त हो चुकी है। आज यह कौन है जो उसके गर्भ में इस तरह उछल रहा है? तो क्या बादल उसके शरीर में ही व्याप्त है? वह मन-ही-मन बादल को आवाज देने लगी, 'बादल, बादल!'

'मां, मां, ओ मां!'

कृपाल आवाज दे रहा था। विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। न ही वहां से हिली। वह जहां खड़ी थी, जैसे खड़ी थी, वैसे ही वहीं खड़ी रही। उसका चेहरा कठोर हो गया। सारा शरीर कड़ा हो गया। नजरें टूटी हुई शहीद-वेदी पर जमी थीं। अपने बच्चों की पुकार का जवाब दिये बिना आज तक कभी नहीं रह सकी है वह, पर आज उसके मुंह से आवाज ही नहीं निकल रही थी। आज वह किसी की बात का जवाब नहीं देगी।

खड़ी-खड़े विमला को अपने बच्चों के बचपन की बातें याद आने लगीं। बचपन में कृपाल एवं दयाल दोनों आपस में बहुत झगड़ते थे पर बादल पर दोनों ही जान छिड़कते थे। वे दोनों बराबर से ही थे उम्र में, इसलिये झगड़ा करते थे पर बादल उन दोनों से बहुत छोटा था। बादल को दिये बिना दोनों भाई कुछ भी मुंह में नहीं डालते थे। जब बादल ने बोलना सीखा तो कृपाल और दयाल दोनों ने उससे पूछा था कि वह किसे अधिक चाहता है? पर बादल भी कम लालची नहीं था। वह किसी भाई को भी खुद से दूर नहीं करना चाहता, अतः दोनों को चाहने की बात कहा करता था। छोटे-से बच्चे की चालाकी पर विमला मन-ही-मन हंसा करती थी।

धीरे-धीरे कृपाल और दयाल बड़े हुए। साथ ही बादल भी बड़ा होने लगा। लड़के जैसे-जैसे बड़े होने लगे वैसे-वैसे उनका स्वभाव न जाने कैसा तो होता गया। बादल को अब अपने बड़े भाइयों का सान्निध्य पहले जितना नहीं मिलता था, क्योंकि अब वे घर से बाहर अधिक व्यस्त रहने लगे थे। धीरे-धीरे बादल ने भी अपना रास्ता चुन लिया। उसके भी अलग दोस्त थे, अलग खेल-कूद होता था। पर इस परिवर्तन से विमला को विशेष चिन्ता नहीं हुई थी। उसने सोचा, लड़के बड़े होंगे तो परिवर्तन तो आयेगा ही, उनके

स्वभाव में।

पर लड़कों की इन सब हरकतों से चिन्ता हो रही थी तो हरप्रसाद को। उन्हें सबसे अधिक कृपाल और दयाल पर गुस्सा आता था। विमला ने हरप्रसाद के मुंह से ही सुना था कि दोनों बड़े लड़के कॉलेज जाते तो हैं पढ़ने के लिए, पर वहां जाकर वे राजनीति करते हैं। विमला सोचती, सभी छात्र तो ऐसा करते हैं, फिर कृपाल और दयाल का क्या दोष है? वह कहती, 'कॉलेज में जाकर वे लोग क्या करते हैं क्या नहीं, हमें इन बातों में दिमाग खपाने से क्या लाभ ?'

हरप्रसाद कहते, 'सिर्फ राजनीति में ही पड़ते तो भी विशेष चिन्तित होने की बात नहीं थी, पर राजनीति के नाम पर वे लोग गुण्डागर्दी करते हैं। मेरे पैसों से कॉलेज में पढ़कर यह सब नहीं चलेगा। यह बात तू अपने बेटों को अच्छी तरह समझा दे।'

हरप्रसाद के बात करने के ढंग से विमला को मन-ही-मन बुरा लगता लेकिन फिर वह सोचती, बच्चों को बाप के कहने में ही चलना चाहिये, अतः कृपाल और दयाल से उसने कह दिया था, 'बेटा, तुमलोग कॉलेज में पढ़ने के लिये जाते हो। वहां जाकर तुमलोग यह सब क्या वधे करते हो? तुम्हारे पिताजी को तुम्हारे ये ढंग जरा भी पसन्द नहीं हैं।'

उन दोनों का एक ही जवाब था, 'यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा, मां।'

सिर्फ बादल की ओर से उस समय तक किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। हरप्रसाद को भी उससे कोई शिकायत नहीं थी। बादल को अधिक लगाव मां से ही था, बाप से नहीं। घर के काम में मां को वही सहारा लगाया करता था यद्यपि करता था बक-झक करने पर ही।

□

जमाना धीरे-धीरे बदल रहा था।

सर्वप्रथम हरप्रसाद का गुस्सा बड़े बेटे कृपाल पर निकला था। बाहर का विरोध घर में आ पहुंचा। सिर्फ बहस करके ही मामला ठंडा नहीं होता। हरप्रसाद क्रुद्ध हो उठते बेटे पर। पर कृपाल भी पीछे नहीं रहता। वह जलती आंखों से बाप को घूरता रहता। आखिर विमला बीच में आकर कृपाल को

। ले जाती और कहती, 'चल उधर, बाप के मुंह पर इस तरह जवाब देता शर्म नहीं आती ?'

किन विमला को हरप्रसाद पर भी कम क्रोध नहीं आता था। कृपाल कोई हरी व्यक्ति या दुश्मन तो नहीं था उनका। आखिर था तो बेटा ही, पर र में दोनों को झगड़ते देखकर यही लगता था मानो दोनों एक-दूसरे के दुश्मन हों। सिर्फ कृपाल से ही नहीं, दयाल के साथ भी हरप्रसाद का वैसा ही व्यवहार था। विमला सोचती, दयाल और कृपाल एक ही दल में शामिल हैं।

पर विमला के इस भ्रम को टूटने में भी अधिक समय नहीं लगा था। उसने देखा कि दोनों भाइयों के बीच भी जमकर बहस होती है। यह विरोध घर में होने की वजह से तथा विमला की उपस्थिति की वजह से मार-पीट का रूप धारण नहीं कर सकता था। उसकी समझ में नहीं आता कि सब अलग-अलग दल में शामिल क्यों हैं ? वह सोचती, अगर सभी मिलकर एक दल बना लें तो सारा झगड़ा ही मिट जाय। पर उस वक्त घर में तीन दल थे, तथा चौथे दल में थे बादल और विमला। वैसे बादल भी बिल्कुल निरपेक्ष नहीं था। उसका अधिक झुकाव मंझले भाई दयाल की ओर था। वह कहता, मंझले भैया ठीक कहते हैं।'

विमला पूछती, 'कैसे ?'

बादल कहता, 'हमारी स्कूल के ऊंची क्लास के सभी लड़के मंझले भैया को बहुत मानते हैं। गेट पर खड़े होकर जब मंझले भैया भाषण देते हैं तब सभी लड़के हड़ताल करके क्लास से बाहर निकल आते हैं।'

'तो तू भी मंझले भैया की तरह ही बनेगा ?'

इस बात का बादल कोई जवाब नहीं देता। वह कहता, 'अभी से मैं यह कैसे कह सकता हूं ?'

विमला कहती, 'तू तो इन बखेड़ों में मत पड़ना। देखता नहीं, घर में कैसी अशांति रहती है !'

जैसे-जैसे समय गुजरता गया अशांति का रूप बदलता गया। अब हरप्रसाद, कृपाल, दयाल कोई भी किसी से आपस में बात नहीं करते। जब विमला खाना बना लेती तब वे चुपचाप बैठकर खा लेते। रात को अपने-अपने बिस्तर पर

पढ़कर सो रहते। कई बार रात को कृपाल तथा दयाल घर पर नही रहते। उनकी पढ़ाई-लिखाई भी चौपट हो रही थी। कृपाल ने अपने लिये एक नौकरी का इन्तजाम कर लिया था। दयाल को भी नौकरी ढूढने की फिक्र लगी थी। पढाई तो अब होने से रही, लेकिन सिर्फ पार्टीबाजी से भी तो काम नही चलेगा। उसे भी एक नौकरी की सख्त जरूरत है।

इस बीच बादल भी बड़ा हो गया। जब वह क्लास दस मे पढ़ रहा था तब उसे टाइफाइड हो गया था। विमला का कलेजा बादल की इस बीमारी से काप उठा था। उसके मन मे बुरे-बुरे ख्याल आते रहते। वह सोचती, इतनी बड़ी करके उसने आज तक एक भी संतान नहीं खोई है। ऐसी भयानक बीमारी भी आज तक उसकी किसी संतान को नही हुई थी। तब देखा गया कि, कृपाल बीमार बादल के लिये डॉक्टर बुलाकर लाया था। दयाल बादल के सिरहाने बैठा उसके माथे पर बर्फ की थैली रख रहा था और उसकी टट्टी, खून, पेशाब आदि जाच करवाने को ले गया था। हरप्रसाद के चेहरे पर भी चिन्ता तथा उद्विग्नता की छाप थी। वे भी बादल के बिस्तर के पास बैठे रहते थे।

तब तक बादल ने कोई पार्टी ज्वाइन नही की थी। अगर कर लेता तो पता नही क्या हाल होता ?

फिर विमला की आखों के समक्ष श्मशान-यात्रा का दृश्य घूम गया। इसी घर के आगन मे खून से लथपथ तथा क्षत-विक्षत बादल की अर्थी उठी थी। बादल की लाश को उसके दोस्तों ने ही घेर रखा था। वे सब उसकी पार्टी के ही लड़के थे। कृपाल तथा दयाल तो वहा एक बार भी आकर खड़े नही हुए। शायद चाहकर भी खड़े नहीं हो सके थे। हरप्रसाद कुछ दूरी पर खड़े थे। उनसे किसी ने एक भी शब्द नही कहा, उन्होंने भी किसी से कुछ नहीं कहा। बादल के दोस्तों ने ही उसकी अर्थी को कंधा देकर श्मशान तक पहुंचाया था। बाप ने, या भाइयों में से किसी ने नही। बादल की मृत देह दोस्तों के कधों पर चढकर ही श्मशान पहुंची थी। हरप्रसाद चुप-चाप खड़े थे, तथा दोनो भाई तो घर में ही नहीं थे उस वक्त।

अगर टाइफाइड के समय बादल ने कोई पार्टी ज्वाइन कर ली होती तो पता नहीं क्या होता ? श्मशान-यात्रा की तरह ही भाई तथा बाप सभी दूर-दूर रहते। पार्टी के सामने बाप, बेटे, भाई आदि किसी का कोई अस्तित्व नहीं

उनका एकमात्र परिचय है बस पार्टी। यह कैसी पार्टीबाजी है, विमला समझ में नहीं आता। वह तो गृहस्थी का बोझ सम्हालता जानती है; स।

इसका मतलब पार्टी ही सब कुछ है। विमला की आंखों में क्रोध की अग्नि चमक उठती है एक पल के लिये। पल भर के लिये उसकी नजरें शहीद-वेदी पर से घूमकर घर की ओर मुड़ती है, मानो एक बार गर्दन घुमाकर वह अपने घर को देख लेने की कोशिश करती है।

'भई, सुनती हो? कहां गई?'

यह आवाज हरप्रसाद की थी। विमला को पुकार रहे थे। पर विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने अपना चेहरा भी घुमा लिया उस ओर से। वह फिर से शहीद-स्मारक की ओर देखने लगी। उसे याद आया कि आज ऑफिसों की छुट्टी है; किस बात की छुट्टी है यह उसे याद नहीं आ रहा है। कृपाल, दयाल, हरप्रसाद कोई भी काम पर नहीं गये। पर कुछ भी हो, आज विमला किसी की बात का कोई जवाब नहीं देगी। आज, इस वक्त, वह जवाब देने में असमर्थ है। उसके पेट में पता नहीं क्या हो रहा है? आज अट्ठारह साल पहले, आज के ही दिन जैसा हुआ था, वैसा ही कुछ उसके रीर में आज भी हो रहा है। उस स्मारक मे भी नहीं है, श्मशान में भी हीं है, बादल तो उसके पेट में ही है। अब वह फिर से इस धरती पर आने को मचल रहा है।

□

जब बादल टाइफाइड के चंगुल से छूटा था तब बहुत ही दुबला हो गया था विमला का मन होता, छोटे बच्चे की तरह उसे अपनी गोद में ले ले। पढ़ का एक साल बरबाद हो गया था, पर उसकी कोई परवाह नहीं थी विम को। लड़के की जान बच गई, यही बहुत है। अगर कृपाल या दयाल मे कोई बीमार होता तब भी विमला को उतना ही दुःख होता। उतनी चिन्ता होती। हरप्रसाद की छोटी-मोटी तकलीफ से भी विमला घबरा है। मर्द लोग और चाहे जितने भी महत्वपूर्ण कार्य करते हों, पर स्वास्थ्य की ओर से बहुत लापरवाह होते हैं। फिर हरप्रसाद ही त मात्र पालनहार था उस गृहस्थी का। विमला कभी भी पति की उपेक्ष

बादल धीरे-धीरे बिल्कुल ठीक हो गया था। कमजोरी भी मिट गई पर स्वास्थ्य पहले जैसा नहीं रहा; हालाकि सुन्दर वह पहले से भी अधिक हो गया था। हमेशा से कम बोलने की आदत थी उसकी—बिल्कुल विमला की तरह। विमला बहुत कम बोलती है। उसकी गृहस्थी उसे अधिक बात करने का मौका ही नहीं देती। सारी गृहस्थी उसी के कंधों पर तो है। घर में साफ-सफाई और चौका-बर्तन के अलावा बाकी सारा काम वही करती है।

बादल कम बात किया करता था। विमला सोचती, कम-से-कम यह तो अपने भाइयों का रास्ता नहीं अपनायेगा। घर में तीन पार्टियां पहले से ही मौजूद थीं और किसी का भी किसी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। यहां तक कि बोलचाल भी बन्द है। बादल यह सब देखता ही है। सब समझता भी है, अतः वह उस रास्ते कभी नहीं जायेगा।

पर विमला ने गलत सोचा था। बादल के कॉलिज ज्वाइन करने से पहले ही विमला ने सुना कि बादल भी एक अन्य ही पार्टी में शामिल हो गया है। विमला ने पूछा, 'तू भी वही पार्टीबाजी करने में लग गया है?'

बादल कम बात करता था। उसने मां की बात का कोई जवाब नहीं दिया लेकिन हरप्रसाद ने उसे आड़े हाथों लिया था। जिस तरह उन्होंने कृपाल तथा दयाल के साथ झगड़ा किया था उसी तरह बादल को भी बहुत डराया-धमकाया था। उन्होंने कहा, 'तू एक खूनी पार्टी में शामिल हुआ है?'

विमला स्तब्ध होकर सुन रही थी। बादल अपने पिता से कह रहा था, 'हमारी पार्टी, खूनी पार्टी नहीं है।'

हरप्रसाद ने चिल्लाकर कहा था, 'बिल्कुल है। खूनी पार्टी है वह। गुण्डे, बदमाश, लुच्चों के अलावा उस पार्टी में एक भी भला लड़का नहीं है। तू मुझे सिखाने की कोशिश मत कर।'

बादल ने कहा था, 'मैं किसी को कुछ नहीं सिखाता।'

विमला को लगा था कि वह इस बादल को नहीं पहचानती। वह शांत एवं दृढ़ स्वर में अपने बाप की बातों का जवाब दे रहा था। कृपाल एवं दयाल की तरह ऊंची आवाज में या चीखकर नहीं बोल रहा था। विमला चकित-सी खड़ी सोच रही थी; बादल ने इस ढंग से बात करना कब सीख लिया? मानो अचानक ही वह बहुत बड़ा हो गया है। सच-ऊंच-नीच समझने लगा।

है। विमला यह सब सोचकर चकित होने के साथ-साथ थोड़ी नाराज भी हुई थी मन-ही-मन। बादल भी बच्चों की तरह चिल्लाकर कुछ कहता तो शायद विमला को अधिक ख़ुशी होती। हालांकि बादल के इस तरह बोलने के ढंग से विमला को कुछ-कुछ गर्व की अनुभूति भी हो रही थी।

लेकिन हरप्रसाद को तो बात करने का दूसरा कोई ढंग आता ही नहीं था। वे तो जिस तरह कृपाल तथा दयाल से कहा-सुनी करते, उसी तरह बादल को डांट रहे थे, 'वह सब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। अगर तुझे इस घर में रहना है तो उस पार्टी को छोड़ना पड़ेगा।'

हरप्रसाद के बात करने का यह रवैया विमला को अच्छा नहीं लगता था। वह सोचती, बातों-बातों में ये सबको घर छोड़ने की धमकी क्यों देते हैं? बादल ने अपने पिता की उस बात का कोई जवाब नहीं दिया था। बस, उनके सामने से हट गया था। हरप्रसाद मन-ही-मन बड़बड़ाते रहे थे, 'जो देश का निर्माण करना नहीं जानते, सिर्फ उसे बरबाद करना ही जानते हैं, उन्हें मैं अपने घर में नहीं रहने दूंगा। अगर अपना-अपना अलग रास्ता ही चुनना है तो—' बस इसी तरह बक-झक करते रहे थे। विमला भी हरप्रसाद के सामने से उस वक्त खिसक गई थी। यह आदमी सिर्फ बक-झक करना और डांटना ही जानता है। ऐसा तो कभी नहीं देखा कि ठंढे दिमाग से अपने बच्चों को कभी कुछ समझाया हो। जिस तरह कृपाल, दयाल से पेश आते रहे हैं उसी तरह अब बादल को भी डांटने लगे हैं।

विमला का हृदय सिर्फ अशांति एवं उद्वेग से ही भरपूर है। वह अक्सर झुंझला पड़ती। सोचती, दुनिया में इतनी चीजों के रहते पार्टीबाजी के पीछे ये लोग क्यों इतने दीवाने रहते हैं? आखिर बादल भी उसी रास्ते चला गया जिस रास्ते उसके बाप और दो भाई गये हैं। उसने बादल से कुछ झुंझलाकर ही कहा, 'तुझे तो लिखने-पढ़ने और खेलने-खाने में मस्त रहना चाहिये। तू क्यों पार्टी-वार्टी के चक्कर में पड़ गया?'

बादल ने बहुत ही शांत स्वर में जवाब दिया, 'मैं किसी को कोई नुकसान तो पहुंचा नहीं रहा हूं।'

अब विमला सचमुच गुस्सा हो गई। बोली, 'मैं नफा-नुकसान कुछ नहीं समझती। एक ही घर में तुम चार प्राणी, चारों अलग-अलग पार्टी के पीछे

पागल रहते हो, श्रापस में झगड़ा-बहस करते हो, यह सब मुझसे सहन नहीं किया जाता। तू तो यह पार्टी-वार्टी छोड़ दे।'

बादल ने गंभीर होकर जवाब दिया था, 'मैं घर में किसी के साथ भी झगड़ा करना नहीं चाहता, न मैं किसी के साथ बहस करना चाहता हूं। हां, पार्टी भी नहीं छोड़ सकता मैं।'

विमला ने कहा, 'हां, तू पार्टी क्यों छोड़ने लगा ! फिर तो मुझे थोड़ा आराम मिल जायेगा न। समझ गई बेटा, मैं अच्छी तरह समझ गई। जब तक मैं मर नहीं जाती, तुम बाप-भाइयों की पार्टी नहीं छूटेगी। हे भगवान, मैं कहां चली जाऊं ? मुझे उठा ले ईश्वर इस दुनिया से ! यह भी भला कोई गृहस्थी है जिसमें पार्टीबाजी के अलावा कुछ भी नहीं बचा है।'

विमला का गला रुंध गया। आंखों से आंसू बहने लगे। वह फिर बोली, 'अब तो लगता है, मुझे भी एक पार्टी में शामिल होना पड़ेगा।'

मां की बातें सुनकर बादल कुछ विचलित-सा हो उठा। बोला, 'तुम इस तरह जी खराब क्यों करती हो ? मैंने कहा न, मैं पिताजी से या भाइयों से झगड़ूगा नहीं।'

पर बादल की यह बात भी गलत साबित हुई। कभी कृपाल से, कभी दयाल से, तो कभी हरप्रसाद से उसकी बहस-झड़प होती ही रहती। बाहर की अशांति ने घर में पुख्ता नीड़ बना लिया था। बाहर जो भी गड़बड़ होती, उसका सारा हिसाब घर आकर चुकाया जाता। उनकी बातें सुन-सुनकर विमला समझ गयी थी कि बादल अपनी पार्टी के काम में सक्रिय रूप से भाग ले रहा है। पढ़ाई-बढ़ाई की बातें तो उसके दिमाग पर से बिल्कुल छूट गई थीं।

शुरू-शुरू में कृपाल ने विमला से एक बार कहा था, 'बादला बहुत अधिक बिगड़ गया है। तुम उसे सावधान कर देना। वरना किसी दिन कोई कांड हो गया तो हाथ मलने के सिवाय कोई चारा नहीं रहेगा।'

विमला ने कहा था, 'तो मुझसे कहने क्यों आया है ? अपने छोटे भाई को तुम खुद नहीं समझा सकते ?'

'वह समझने-समझाने की सीमा को पार कर गया है।'

'और तू भीतर ही है। क्यों ? तू अपनी पार्टी नहीं छोड सकता ?' विमला

कड़ुवे स्वर में कहा था।

ाल ने कहा, 'मुझे जो कहना था सो कह दिया। तुम्हें जानकारी देने का ा यही मतलब है कि बादल आग से खेल रहा है। मार-पीट और गुण्डागर्दी अलावा उसे आज-कल और कुछ नहीं सूझता है।'

भी का एक-दूसरे के विरुद्ध बस यह एक ही अभियोग था। विमला के पास ाकर सिर्फ कृपाल ने ही बादल के विरुद्ध अभियोग लगाया हो, यह बात हीं थी। दयाल ने भी वही सब बातें कही थीं तथा हरप्रसाद ने भी वही ातें बादल के विरोध में कहीं जो कृपाल ने कही थीं। हरप्रसाद ने कहा था, अपने छोटे बेटे से कह देना, अब भी समय है कि वह सम्हल जाय। उसके हुत पंख निकल आये हैं। किसी दिन वे पंख जला दिये जायेंगे।'

हरप्रसाद के मुंह से ऐसी बातें सुन विमला का हृदय कांप उठा था, लेकिन साथ ही हरप्रसाद पर भी उसे कम गुस्सा नहीं आया था। उसने हरप्रसाद से कहा था, 'अपने बेटे को क्या तुम नहीं समझा सकते? तुम कोई बच्चे तो हो नहीं। तुम अपने बच्चों के सुख की खातिर पार्टी नहीं छोड़ सकते? अपने बेटे से कुछ कह भी नहीं सकते? तुम सब मुझे ही आ-आकर क्यों कहते हो?'

हरप्रसाद ने कहा, 'तुम यह सब नहीं समझोगी। मेरे पार्टी छोड़ने न छोड़ने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। मैं इनलोगों की तरह गुण्डई पार्टी में नहीं हूं। लेकिन बादला जिस तरह हवा में उड़ रहा है न, वह कुछ-न-कुछ कांड किये बिना नहीं मानेगा।'

विमला ने तिक्त-नाराजी भरे स्वर में कहा, 'मुझे कुछ कहने से फायदा नहीं है। मैं तो तुमलोगों के लिये एक नौकरानी से अधिक कुछ नहीं हूं। तुमलोगों की खिदमत कर रही हूं। तुमलोगों को तो बस एक-दूसरे से झगड़ने का ही काम है। मुझे तो अब तुमलोग दुनिया के तमाम झंझटों से मुक्ति दे दो।'

इतना कह विमला हरप्रसाद के सामने से चली गई थी, फिर भी हरप्रसाद की बड़बड़ाहट उसके कानों तक पहुंच रही थी—'बादला की मौत मंडरा रही है उसके सिर पर। पार्टी के दादाओं के उकसाने पर वह अपने को बहुत-कुछ समझने लगा है।.....'

विमला का कलेजा फिर एक बार कांप उठा था। बाप होकर हरप्रसाद कैसी

बात कह रहे हैं ! यही नहीं कि उन्होंने ऐसा सिर्फ बादल के लिये ही कहा हो; कृपाल और दयाल को भी वे इसी तरह कहते रहते थे। तो क्या पितृत्व से भी बढ़कर है पार्टी ? भाइयों के मन में क्या जरा-सा भी भ्रातृ-प्रेम नहीं है ? सभी मिलकर एक सुखी गृहस्थी बसा सकते थे, वह तो हुआ नहीं; एक-दूसरे के विरुद्ध बस शिकायत ही करते रहते हैं। अभियोग लगाते रहते हैं।

विमला ने बादल से कहा, 'तेरे पिताजी तथा भाई तेरी बहुत शिकायत कर रहे थे। क्या तुम कोई भयानक काम करते हो जिससे कोई अशुभ काड हो जाने की संभावना है ?'

बादल ने कहा, 'काड-वाड कुछ नहीं होनेवाला, मां। वे लोग चाहते हैं कि खुद तो पार्टीबाजी करते रहें और मैं चुपचाप बैठा रहूं। पर मैं ऐसा क्यों करने लगा ? उनके डराने-धमकाने से मैं रत्ती भर भी नहीं डरता। अधिक चू-चपड़ करेंगे तो हम भी चुप बैठनेवाले नहीं हैं।'

फिर भी विमला ने उसे डांटते हुए कहा था, 'तू उनलोगों से बहस ही क्यों किया करता है ?'

बादल ने जवाब दिया, 'मैं क्यों उनसे बहस करने लगा ? वे ही कमर कस-कसकर आते हैं।'

'तू क्या अपने भाइयों और अपने पिताजी के साथ भी मिल-जुलकर नहीं रह सकता ?'

'ओह, जैसे पिताजी और भैया लोग तो मुझसे मिलकर ही रहते हैं ! दरअसल, पार्टी के मामले में किसी के साथ किसी का भी मेल-जोल सम्भव नहीं है।' बादल एक पल के लिये चुप रह गया, फिर बोला, 'मैं पार्टी के साथ बेईमानी नहीं कर सकता। चाहे इसके लिये भाई तथा पिताजी मुझे जितना भी क्यों न डांटें। वे लोग खुद तो आपस में मार-पीट करते रहते हैं, और मुझ पर रोब गाठना चाहते हैं। पर मैं भी किसी की परवाह नहीं करता।'

अब विमला ने अपना अन्तिम अमोघ अस्त्र छोड़ा। बोली, 'बाप को नाराज करके तू खुद सब कर रहा है, कल को तुझे इस घर से चले जाने को कह बैठें तो ?'

बादल ने तत्काल जवाब दिया था, 'तो चला जाऊंगा। लेकिन इस डर से

पिताजी का या पिताजी की पार्टी का समर्थन नहीं कर सकता।'

विमला अजीव उलझन में फंस गई थी। उसके मन को किसी तरह भी शांति नहीं थी। इधर कुंआ, उधर खाई जैसी बात थी। अपने ही पति और पुत्रों में से किसी को भी समझा नहीं सकती वह। एक ही घर के चार सदस्यों में चार पार्टियों का झगड़ा चल रहा था। सब एक साथ बैठकर भोजन करना तक भूल गये थे। अगर किसी दिन संयोगवश सब एक साथ खाना मांग भी बैठते, तो खामोशी से खाकर उठ खड़े होते। कोई किसी के साथ एक शब्द भी नहीं कहता, मानो हाड़-मांस के निर्जीव पुतले बैठे हों।

□

'मां, मां, कहां गई ?'

अब दयाल पुकार रहा है। इससे पहले कृपाल पुकार रहा था। उधर कब से हरप्रसाद भी पुकार रहे हैं। पर विमला ने किसी की पुकार का जवाब नहीं दिया। आज के पहले उनके पुकारने पर वह जवाब दिये बिना नहीं रह सकती थी। पर आज वह किसी की बात का भी जवाब नहीं देगी। यहीं खड़ी-खड़ी वह उस उपेक्षित, टूटे हुए शहीद-स्मारक की ओर ही देखती रहेगी। बादल का खून उसी जगह हुआ था।

आकाश काले बादलों से ढका हुआ है। सनसनाती हवा के साथ-साथ मोटी-मोटी बूंदें भी पड़ने लगी हैं। हवा के झोंकों से जवाकुसुम का पेड़ विमला के मुंह तथा सारे शरीर पर झुका जा रहा है। पर वह वहां से जरा भी नहीं खिसकी। आज वह फिर उस रसोईघर में नहीं जा सकती। आज से अट्ठारह साल पहले के बादल के जन्म-स्थान यानी जच्चाघर में जाते ही उसके पेट में ऐंठन-सी होने लगती है। जी कैसा-कैसा हो उठता है। वह सीधी खड़ी रहने में भी असमर्थ है। मानो पेट में कुछ हिलता है, इधर-उधर होता है। पेट में बादल है क्या ? तो क्या, बादल अभी उसके गर्भ में ही है ? विमला दांत से होंठ काटकर दर्द सहने की कोशिश करती है। तो क्या फिर दर्द उठ रहे हैं ?

उस स्मारक की ओर देखते-देखते विमला की आंखों के सामने बादल का क्षत-विक्षत, लहू-लुहान शरीर मूर्त्त हो उठता है और तब उसे याद आती हैं सभी द्वारा बादल को डांटने और धमकी दिये जाने की बातें। उसने अपने ही दिल से प्रश्न किया, किसने मारा है बादल को ? कृपाल के दल ने ? या दयाल के

दल ने ? या हरप्रसाद के दल ने ? सभी ने इस बात से इन्कार कर दिया है कि उनके दल ने बादल को मारा है। पुलिस ने शक में जिनको पकड़ा था उन्होंने भी इस बात से इन्कार किया है। जबकि उसे चेतावनी-धमकी इन सभी ने दी थी। कृपाल, दयाल एवं हरप्रसाद. की पार्टियों के अलावा और भी पार्टियां हैं, पर किसी ने भी बादल को मारने की बात स्वीकार नहीं की है। विमला को भी पता नहीं कि बादल के खून से किसने हाथ रंगे हैं।

चाहे जितना भी अस्वीकार क्यों न करें, पर किसी-न-किसी पार्टी ने तो मारा ही है बादल को। वह कौन-सी पार्टी है ? सबसे ज्यादा शक तो विमला को हरप्रसाद, कृपाल तथा दयाल की पार्टीवालों पर ही है। क्योंकि उन तीनों ने ही कहा था, 'बादल के सिर पर मौत मंडरा रही है।' जबकि वे विमला के ही पति और पुत्र हैं। क्या बादल हरप्रसाद का बेटा नहीं था ? दयाल, कृपाल का भाई नहीं था ? सिर्फ किसी एक पार्टी का कोई एक लड़का ही था ? उनके लिये क्या वह उनकी विरोधी पार्टी का लड़का मात्र ही था ? अगर यही बात है, तो आज विमला भी उनकी पुकार पर यहां से हिलेगी तक नहीं।

विमला को साफ सुनाई दे रहा था कि वे सभी यानी दयाल, कृपाल और हरप्रसाद उसे बारी-बारी से पुकार रहे हैं।

'मां, ओ मां !'

'मां, कहां गई ?'

'अई, कहां हो ? सुनती हो ?'

विमला सब समझ रही है कि वे लोग उसे कभी कमरे में, तो कभी रसोईघर में, तो कभी आंगन में ढूंढते फिर रहे हैं। फिर दयाल ने रसोईघर के पास से चिल्लाकर कना की मा को पुकारा, वह भी सुना विमला ने। दयाल की आवाज आ रही थी, 'मौसी, ओ मौसी !'

कना की मां की आवाज सुनाई पड़ी, 'क्या बात है रे दयाल ?'

'मां आपके यहां आई है क्या ?'

'नहीं तो। हमारे यहां तो सुबह से एक बार भी नहीं आई। कहां गई तेरी मां ?'

ता ? यहां तो नहीं दीख रही है। रसोईघर का दरवाजा भी खुला है। कड़ाही की सारी सब्जी कुत्ता खा गया है, और खाना-वाना कुछ नहीं है।'

की मां की उद्विग्न आवाज सुनाई पड़ती है, 'यह क्या कह रहा है तू ? मां तो ऐसी लापरवाही कभी नहीं करती। देख, ढूंढ़ तो सही, कहां गई ? भी आती हूं।'

र विमला को जाने के लिये कहां जगह है ? वह तो अपने बेटे की उसी टी हुई शहीद-वेदी की ओर एकटक देख रही है जहां तीन महीने पहले बादल के दोस्त उसे बुलाकर ले गये थे। बादल के उन दोस्तों ने भी सिर्फ स्मारक बनवा दिया और छुट्टी पा ली। अब उनको भी इधर आने की या यह देखने की फुरसत कहां है कि उनका बनाया शहीद-स्मारक तीन महीने में ही कैसे टूट गया है ! वे तो जैसे पहले किया करते थे, वैसे ही अब भी अपनी पार्टी का काम कर रहे हैं। केवल वही क्यों, इस घर में बादल के बाप-भाई भी तो वही सब कर रहे हैं।

किसी ने कुछ नहीं खोया, सिर्फ विमला ने खोया है। उसी ने उसे दस महीने गर्भ में धारण किये रखा। अट्ठारह साल पहले, आज के दिन, इस वक्त तक, मेघू की मां ने बादल को धो-पोंछकर, उसकी छाती के पास सटाकर सुला दिया था।

□

'बड़ी बहू !'

हरप्रसाद छाता ताने उसके पास पहुंच चुके थे। हरप्रसाद अपने भाइयों में सबसे बड़े थे। संयुक्त परिवार होने के कारण विमला बड़ी बहू के नाम से ही जानी जाती थी। हरप्रसाद भी कभी-कभी उसे इस नाम से पुकारा करते थे।

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरप्रसाद ने कहा, 'हम सब तुम्हें कब से हर जगह ढूंढ रहे हैं, और तुम यहां खड़ी क्या कर रही हो ?'

हरप्रसाद को कुछ बताने की जरूरत नहीं। विमला जानती है कि हरप्रसाद को यह याद नहीं है कि आज बादल का जन्म-दिवस है। दोनों लड़कों

भी याद नही है। पर विमला नही भूल सकती कि किस लड़के को उसने किस दिन जन्म दिया था। तीनों लड़कों में से जब जिसका जन्म-दिन आता है, विमला थोड़ी-सी खीर बनाकर उसे खिला देती है। इतने वर्षों से वह ऐसा ही करती आई है। पिछली साल आज के दिन उसने बादल को खीर बनाकर खिलाई थी, पर अब बादल के लिये विमला को कभी खीर नही बनानी पड़ेगी।

हरप्रसाद की आवाज मे असहाय आश्चर्य था, क्योंकि वे विमला को बिल्कुल भी समझ नही पा रहे थे। वे तो बस बोले ही जा रहे थे, 'हमारे लिये खाना नहीं बनाया। आधी कच्ची सब्जी छोड़ आई, वह भी कुत्ता खा गया। यह सब क्या ढंग हैं तुम्हारे ?'

विमला के ढंग हरप्रसाद नही समझ सकता। वह कुछ कहना-समझाना भी नही चाहती। इस वक्त उसकी आंखो के सामने तो शिशु बादल खेल रहा है। उसके बाद बादल बड़ा हुआ। बादल स्कूल में जा रहा है। मां के पास दो पैसों के लिये पहरों जिद करता है। इस वक्त विमला को अपनी आंखों के सामने सिर्फ बादल''''बादल, बस बादल-ही-बादल दिख रहा है। औरों के लिये तो वह एक पार्टी का लड़का मात्र था। संतान तो बस विमला की था।

हरप्रसाद की आवाज सुन कृपाल तथा दयाल भी वहां आ पहुंचे। वे भी चकित-से मां की ओर देख रहे थे, पर आपस मे कोई भी बोल नही रहा था। विमला को यों ठूंठ की तरह खड़े देखकर भी आपस में बात नहीं कर पा रहे हैं।

कृपाल ने कहा, 'मां, तुम यहां क्यों खड़ी हो ? क्या हो गया ?'

सभी अवाक् हैं। कोई भी विमला को समझ नहीं पा रहा है जबकि वे विमला के ही पति और पुत्र हैं। विमला अपने पति और पुत्रों को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती, पर आज वह घर मे होते हुए भी उनके साथ नहीं है। विमला आज बादल के साथ ही रहेगी। बादल उसके हृदय में है।

हरप्रसाद ने कहा, 'बड़ी बहू, भीतर चलो। यहां खड़ी-खड़ी मत भीजो।'

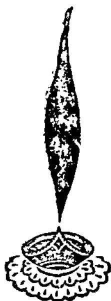
विमला की नजरें टूटे हुए स्मारक पर जमी थीं। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'नहीं। मैं नहीं जाऊंगी।'

'क्या पता ? यहां तो नहीं दीख रही है। रसोईघर का दरवाजा भी खुला पड़ा है। कड़ाही की सारी सब्जी कुत्ता खा गया है, और खाना-वाना कुछ बना नहीं है।'

कना की मां की उद्विग्न आवाज सुनाई पड़ती है, 'यह क्या कह रहा है तू ? तेरी मां तो ऐसी लापरवाही कभी नहीं करती। देख, ढूंढ तो सही, कहां गई ? मैं भी आती हूं।'

पर विमला को जाने के लिये कहां जगह है ? वह तो अपने बेटे की उसी टूटी हुई शहीद-वेदी की ओर एकटक देख रही है जहां तीन महीने पहले बादल के दोस्त उसे बुलाकर ले गये थे। बादल के उन दोस्तों ने भी सिर्फ स्मारक बनवा दिया और छुट्टी पाली। अब उनको भी इधर आने की या यह देखने की फुरसत कहां है कि उनका बनाया शहीद-स्मारक तीन महीने में ही कैसे टूट गया है ! वे तो जैसे पहले किया करते थे, वैसे ही अब भी अपनी पार्टी का काम कर रहे हैं। केवल वही क्यों, इस घर में बादल के बाप-भाई भी तो यही सब कर रहे हैं।

किसी ने कुछ नहीं खोया, सिर्फ विमला ने खोया है। उसी ने उसे दस महीने गर्भ में धारण किये रखा। अट्ठारह साल पहले, आज के दिन, इस वक्त तक, मेघू की मां ने बादल को धो-पोंछकर, उसकी छाती के पास सटाकर सुला दिया था।



इस संकलन के कथाकार

संक्षिप्त परिचय

▫

विमला का जवाव सुनकर तीनों ही पार्टी-मेम्बरों की चकित नजर पल भर को आपस में मिल गईं। कृपाल ने कहा, 'खाना नहीं बनाया। अब हम क्या खायें ?'

विमला ने साफ एवं दृढ़ स्वर में कहा, 'आज मैं तुमलोगों को खाना नहीं दे सकती।'

तीनों पार्टी के लोग आश्चर्य में डूब गये। आज विमला उनके लिये पार्टी से भी बड़ी उलझन बनकर उपस्थित हो गई थी। दयाल ने कहा, 'तो हमलोग क्या करें अब ?'

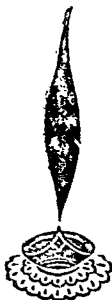
विमला ने कहा, 'तुमलोग अपनी पार्टी का काम करो जाकर। मुझे मत छेड़ो।'

अंतहीन विस्मय में डूबे तीनों व्यक्ति खामोश खड़े थे। विमला उनके सामने से हटकर नागफनी की बाड़ के पास जाकर खड़ी हो गई। तीनों ने ही एक-दूसरे की ओर देखा। तीनों की नजरों में अपरिचय की छाप थी। मानो पति, पत्नी को नहीं पहचानता। लड़के मां को नहीं पहचानते। अब उनके चेहरे पर ऐसे भाव थे मानो विमला से कुछ कहने की हिम्मत नहीं हो रही हो। यह पहली वार ही ऐसा हुआ था जब वे विमला के ढंग देखकर सिर्फ चकित ही नहीं हो रहे थे बल्कि उन्हें डर भी लग रहा था।

थोड़ी देर और खड़े रहकर तीनों ही व्यक्ति वहां से चले गये। वर्षा की बौछार और हवा के तेज झोंकों के कारण वहां खड़े रहना मुश्किल था। तीनों ही व्यक्ति एक असहाय अस्थिरता एवं आश्चर्य में डूबे एक-एक कर चले गये।

विमला उसी तरह खड़ी है। बरसात के पानी से वह धुली जा रही है। पता नहीं वह क्या चीज है जो उसके गले के भीतर से बाहर की ओर निकल पड़ना चाहती है। उसकी आंखों से आंसू झर रहे हैं जो उसके चेहरे पर से बहती बरसात की धार में मिल जाते हैं। विमला छाती पर दोनों हाथ रखकर पुकार उठती है, 'बादल, बादल, तू मेरे पास है। मेरे ही पास रह तू ....।'





इस संकलन के कथाकार

संक्षिप्त परिचय

▫



विमल मित्र

जन्म : १८ मार्च १९१२। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बंगला साहित्य में एम० ए० किया। १९४५ में 'दिनेर-पर-दिन' शीर्षक प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। १९६२ में मतिलाल पुरस्कार और १९६४ में रवीन्द्र पुरस्कार प्राप्त किया।

आपके दर्जनों उपन्यासों और कहानियों के हिन्दी-अनुवाद हो चुके हैं जिनमें कुछ प्रमुख उपन्यास—'साहब, बीबी, गुलाम', 'खरीदी कौड़ियों के मोल', 'इकाई, दहाई, सैकड़ा', 'पटरानी', 'नायिका', 'मन ही में रही', 'काजल', 'सुरसतिया' आदि हैं। कई उपन्यासों और कहानियों पर हिन्दी में भी फिल्में बनी हैं और दर्शकों द्वारा पसन्द की गयी हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र के बाद हिन्दी-पाठकों में सर्वाधिक लोकप्रिय आप ही रहे हैं।

पूर्णतः लेखन-जीवी। पता : २९।१।१, चेतला सेण्ट्रल रोड, कलकत्ता-२७।



आशापूर्णा देवी

जन्म : ८ जनवरी १९०९। पिता श्री हरेन्द्रनाथ गुप्त बंगाल के एक अच्छे चित्रकार थे। पारिवारिक संस्कारों के कारण अल्प आयु से ही साहित्य के प्रति प्रबल आकर्षण के फलस्वरूप गृह-कार्य के साथ-साथ साहित्य-साधना में भी रत।

बंगला में अनेक उपन्यास और कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, और आप बंगला कथा-साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय कथा-लेखिका हैं। हिन्दी में भी आपकी कृतियों के अनुवाद हुए हैं जिनमें 'रात का पंछी' शीर्षक उपन्यास भी

शामिल है। बंगला की कई कृतियों पर सफल फिल्में भी बनी है। १९५४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से लीला पुरस्कार और १९५९ में मतिलाल पुरस्कार प्राप्त हुआ। आपका पूरा समय लेखन-कार्य को ही समर्पित है। पता : १७ कानूनगो पार्क, पोस्ट गडिया, जिला : २४ परगना।

■ वनफूल

बंगला के ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठित कथाकार। लघु-कथाओं पर तो आपका एकाधिकार है। कम-से-कम शब्दों में बडी-से-बडी बात कह देना आपकी विशिष्टता है। हिन्दी-पाठकों के लिये भी आप सुपरिचित हैं, कारण हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियों के अनुवाद अरसे से बराबर छपते रहे हैं। बंगला में तो आपकी कहानियों और लघु-कथाओं के कई संग्रह छप चुके है। पता : पी-६६, बी-ब्लॉक, लेक टाउन, कलकत्ता-५५।



■ गजेन्द्रकुमार मित्र

जन्म : १९०९, कलकत्ता में। बचपन काशी में बीता और छठी कक्षा तक शिक्षा भी वहीं हुई। प्रथम रचना १९२८ में 'ऋत्विक' पत्रिका में प्रकाशित हुई। बंगला में ऐतिहासिक उपन्यासों और कहानियों के आप विशिष्ट ख्यातिप्राप्त कथाकार हैं।

'कलकत्ता के नजदीक ही' तथा 'नारी और नियति' उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से प्रथम पर आपको साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

बंगला में कई कृतियों पर फिल्में बन चुकी हैं; हिन्दी में भी बनी हैं। हिन्दी की प्रसिद्ध फिल्म 'कंगन' आपके ही बंगला उपन्यास 'रजनीगंधा' पर आधारित थी। एक मित्र की साझेदारी में 'मित्र एण्ड घोष' नाम से एक प्रतिष्ठित प्रकाशन-संस्थान है; उससे और स्वतन्त्र लेखन से जीविकोपार्जन। पता : मित्र एण्ड घोष, १०, श्यामाचरण दे स्ट्रीट, कलकत्ता-१२।



■ दिव्येन्दु पालित

जन्म : १९३९। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० पास करके कलकत्ता के सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक-पत्र 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' के सम्पादकीय विभाग में कार्य शुरू किया। आजकल एक व्यापारिक प्रतिष्ठान में अधिकारी के पद पर हैं।

बंगला के युवा कथाकारों में आपका एक विशिष्ट स्थान है। अब तक पाँच उपन्यास, एक कहानी-संग्रह और एक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। पता : १४।२, हिन्दुस्थान रोड, कलकत्ता-२९।



■ मिहिर आचार्य

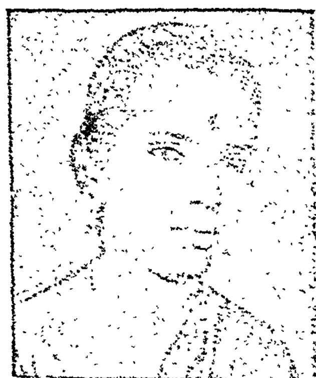
जन्म: १९२७, दिनाजपुर [जो अब बंगला देश में है]। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बंगला साहित्य में एम० ए० किया। सम्प्रति अध्यापन के साथ-साथ गत आठ वर्षों से बंगला की प्रथम श्रेणी की साहित्यिक कहानी-पत्रिका 'शुकसारी' के सम्पादक हैं।

बारह उपन्यास और चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी-संग्रहों में 'आज-कल-परसों' और 'अपराह्न की नदी' बहु-चर्चित हुए हैं। इनके अलावा, 'पूर्व बांगलार गल्प संग्रह' और 'पूर्व बांगलार कविता' शीर्षक दो संकलनों का सम्पादन भी किया है। पता : सम्पादक 'शुकसारी', १७२।३५, आचार्य जगदीशचन्द्र बोस रोड, कलकत्ता-१४।

■ सुनील गंगोपाध्याय

बंगला की आज की पीढ़ी के सर्वाधिक चर्चित नवयुवक कथाकार। बंगाल में भूखी पीढ़ी के आंदोलन के समय आप उसके एक प्रमुख सूत्रधार थे। इस अल्प आयु में ही विदेश-भ्रमण भी कर चुके हैं। सत्यजित राय द्वारा निर्देशित

शीर्षक उपन्यासों पर अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, कॉफी-हाउसों और शिक्षा-संस्थाओं में न केवल गर्मागर्म वाद-विवाद ही हुए, वरन् अदालत में मुकदमें भी चलाये गये थे। 'गंगा', 'आयिनी', 'सात सुमनेर पार' आदि आपके अन्य चर्चित उपन्यास हैं। बंगला में कई उपन्यासों पर बहु-चर्चित फिल्में बनी हैं, और बन रही हैं। पूर्णतया लेखन-जीवी। पता : द्वारा-आनन्द पब्लिशर्स, ४५ बेनियाटोला लेन, कलकत्ता-६।



■ पुष्पा देवड़ा

जन्म : १९४४, पश्चिम बंगाल के रानीगंज में। बंगला से कई कहानियों और उपन्यासों के अनुवाद किये जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में एवं प्रकाशकों से प्रकाशित हुए।

अजितकृष्ण बसु लिखित जादू-कहानियां 'धर्मयुग' के कई अंकों में प्रकाशित हुईं। बिमल मित्र का उपन्यास 'काजल' 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के एक ही अंक में छपा। 'अणिमा' के 'बंगला प्रणय कहानी विशेषांक' और 'भारतीय प्रणय कहानी विशेषांक' के लिये कई बंगला कहानियों के अनुवाद किये। इनके अलावा, 'अणिमा' के 'बंगला देश कथा विशेषांक' के साथ-साथ प्रस्तुत 'समकालीन पश्चिम बंग कथा विशेषांक' की सब कहानियां भी आपके द्वारा ही अनूदित हैं।

प्रकाशकों में विमल मित्र के 'पटरानी', 'नायिका' और 'काजल' तथा गजेन्द्रकुमार मित्र का 'नारी और नियति' राजपाल एण्ड संज से, वाणी राय का 'तनिमा-जातक' अपरा प्रकाशन से तथा ताराशंकर बन्द्योपाध्याय का 'कंचनमाला' हिन्दी बुक सेन्टर से प्रकाशित हुए हैं। पता : अणिमा कार्यालय, पुलिस स्मारक, जयपुर-४।

